व्याख्याकार :

विजय मुनि शास्त्री, साहित्य रत्न

प्रकाशक :

सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा

मुद्रक :

प्रेम प्रिंटिंग प्रेस, आगरा

प्रथम प्रवेश :

सन १९६०

मूल्य :

पचास नये पैसे

पच्चीस बोल : एक
मू
ल्
यां
क
न

— सुबोध मुनि

०'जैन दर्शन' के मूल भूत सिद्धान्तो का ज्ञान करने वाले प्रत्येक व्यक्ति का साक्षात्कार सर्व प्रथम इसी लघुतम ग्रन्थ से होता है। यही वह सूत्रात्मक ग्रन्थ है, जिसको हृदयँगम कर, दर्शन शास्त्र की गहराई मे उतरा जाता है, और इसी के माध्मय से आगम ग्रन्थो के विशाल सागर को पार किया जाता है।

०इस दृष्टि से यह लघुतम ग्रन्थ प्रर्याप्त मूल्यवान है। इस ग्रन्थ की व्याख्या अब तक प्राप्त नही थी। अतः कोमल मति बालको को इस का रहस्य समझने मे, बडी असुविधा थी इस व्याख्या से उक्त समस्या का हल हो गया—एक सुन्दर रूप थी।

०मेरा विश्वास है, इस मूल भूत ग्रन्थ मे व्याख्या लिखकर श्री विजय मुनि जी ने तत्त्व जिज्ञासुओ का काफी उपकार किया है। व्याख्या शैली सुन्दर,सरस और सरल है। इसमे बालक से लेकर वृद्ध तक सभी लाभ उठा सकते है।

प्रकाशक की ओर से

'पच्चीस बोल' को नये रूप मे, पाठको के हाथो मे समर्पित करते हुए हमे महान् हर्ष है। यह एक लघु, पर साथ ही महत्व पूर्ण सिद्धान्त ग्रन्थ है। सन्त और गृहस्थ प्राय सभी इसको याद करते हैं। शास्त्र के गुरु गम्भीर ज्ञान को समझने के लिए पच्चीस बोल एक चाबी है।

लाला मक्खनलाल जी हमारी समाज के एक अनुभवी एव वयोवृद्ध श्रावक हैं। आपकी यह बहुत दिनो से अभिलाषा थी, कि पच्चीस बोल पर एक लघु व्याख्या भी हो, जो सरल एवं सुबोध भाषा मे हो। आप ने अपनी यह भावना उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्द्र जी महाराज की सेवा मे व्यक्त की। फलत उपाध्याय श्री जी महाराज ने अपना स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण यह कार्य अपने सुयोग्य शिष्य विजय मुनि जी को करने का आदेश दिया।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन मे लाला मक्खनलाल जी ने जो अर्थ सहायता की है, इसके लिए हम लाला जी का सस्था की ओर से धन्यवाद करते हैं। आशा है, भविष्य मे भी उनकी ओर से हमे इस प्रकार की सहायता मिलती रहेगी।

प्रस्तुत पुस्तक पाठशाला, विद्यालय और स्कूल के छात्रों को ध्यान में रखकर लिखी गई है। छात्र एव छात्राएं यदि इस पुस्तक को पढ़कर अपने ज्ञान की वृद्धि करेंगे, तो हमारा यह प्रयास सफल होगा।

मंत्री—सोनाराम जैन

पच्चीस बोल

[मूल]

१

बोल पहला : गति चार

१ नरक गति
२ तिर्यंच मति
३ मनुष्य गति
४ देव गति

★

२

बोल दूसरा : जाति पांच

१ एकेन्द्रिय जाति
२ द्वीन्द्रिय जाति
३ त्रीन्द्रिय जाति
४ चतुरिन्द्रिय जाति
५ पञ्चेन्द्रिय जाति

★

३

बोल तीसरा : काय छह

१ पृथ्वी काय
२ अप् काय
३ तेजस् काय
४ वायु काय
५ वनस्पति काय
६ त्रस काय

★

४

बोल चौथा : इन्द्रिय पांच

१	श्रोत्र इन्द्रिय	३	घ्राण इन्द्रिय
२	चक्षुप् इन्द्रिय	४	रसन इन्द्रिय

५ स्पर्शन इन्द्रिय

★

५

बोल पाँचवाँ : पर्याप्ति छह

१	आहार	पर्याप्ति
२	शरीर	पर्याप्ति
३	इन्द्रिय	पर्याप्ति
४	श्वासोच्छ्वास	पर्याप्ति
५	भाषा	पर्याप्ति
६	मन	पर्याप्ति

★

६

बोल छठा : प्राण दश

१ श्रोत्र इन्द्रिय बल प्राण

२ चक्षुप् इन्द्रिय बल प्राण

३ घ्राण इन्द्रिय बल प्राण
४ रसन इन्द्रिय बल प्राण
५ स्पर्शन इन्द्रिय बल प्राण

६ मनो - बल प्राण
७ वचन बल प्राण
८ काय बल प्राण

९ श्वासोच्छ्वास-बल प्राण
१० आयुष्य बल प्राण

★

७

बोल सातवाँ : शरीर पांच

१ औदारिक शरीर
२ वैक्रिय शरीर
३ आहारक शरीर
४ तैजस शरीर
५ कार्मण शरीर

★

८

बोल आठवाँ : योग पन्द्रह

चार मन के

१ सत्य मनो - योग
२ असत्य मनो - योग
३ मिश्र मनो - योग
४ व्यवहार मनो - योग

चार वचन के

१ सत्य वचन - योग
२ असत्य वचन - योग
३ मिश्र वचन - योग
४ व्यवहार वचन- योग

सात काय के

१ औदारिक काय - योग
२ औदारिक-मिश्र काय - योग
३ वैक्रिय काय - योग
४ वैक्रिय-मिश्र काय - योग
५ आहारक काय - योग
६ आहारक-मिश्र काय - योग
७ कार्मण काय - योग



९

बोल नौवाँ . उपयोग बारह

पाँच ज्ञान

१ मति ज्ञान

२ श्रुत ज्ञान

३ अवधि ज्ञान

४ मन· पर्याय ज्ञान

५ केवल ज्ञान

तीन अज्ञान

१ मति अज्ञान

२ श्रुत अज्ञान

३ अवधि अज्ञान (विभग ज्ञान)

चार दर्शन

१ चक्षुर् दर्शन

२ अचक्षुर् दर्शन

३ अवधि दर्शन

४ केवल दर्शन



१०

बोल दशवाँ : कर्म आठ

१ ज्ञानावरण कर्म
२ दर्शनावरण कर्म
३ वेदनीय कर्म
४ मोहनीय कर्म
५ आयुष् कर्म
६ नाम कर्म
७ गोत्र कर्म
८ अन्तराय कर्म



११

बोल ग्यारहवाँ : गुण-स्थान चौदह

१ मिथ्या दृष्टि गुण स्थान
२ सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुण स्थान
३ सम्यग्-मिथ्यादृष्टि गुण स्थान
४ अविरत सम्यग्दृष्टि गुण स्थान
५ देश-विरत गुण स्थान
६ प्रमत्त सयत गुण स्थान

७	अप्रमत्त सयत	गुण स्थान
८	निवृत्ति बादर-सम्पराय	गुण स्थान
९	अनिवृत्ति बादर-सम्पराय	गुण स्थान
१०	सूक्ष्म-सम्पराय	गुण स्थान
११	उपशान्त-मोह	गुण स्थान
१२	क्षीण-मोह	गुण स्थान
१३	सयोगी केवली	गुण स्थान
१४	अयोगी केवली	गुण स्थान



१२

बोल बारहवाँ : पाँच इन्द्रियों के तेईस विषय

श्रोत्र इन्द्रिय के तीन विषय

१ जीव शब्द　　२ अजीव शब्द
३ मिश्र शब्द

चक्षुष् इन्द्रिय के पाच विषय

१ कृष्ण वर्ण　　३ रक्त वर्ण
२ नील वर्ण　　४ पीत वर्ण
५ श्वेत वर्ण

घ्राण इन्द्रिय के दो विषय

१ सुगन्ध　　२ दुर्गन्ध

रसन इन्द्रिय के पाच विपय

१	अम्ल रस	३	कटु रस
२	मधुर रस	४	कपाय रस

५ तिक्त रस

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विपय

१	शीत स्पर्श	५	लघु स्पर्श
२	उष्ण स्पर्श	६	गुरु स्पर्श
३	रूक्ष स्पर्श	७	मृदु स्पर्श
४	स्निग्ध स्पर्श	८	कर्कश स्पर्श



१३

बोल तेरहवाँ : दश प्रकार का मिथ्यात्व

१	जीव	को	अजीव	समझना	मिथ्यात्व
२	अजीव	को	जीव	समझना	मिथ्यात्व
३	धर्म	को	अधर्म	समझना	मिथ्यात्व
४	अधर्म	को	धर्म	समझना	मिथ्यात्व
५	साधु	को	असाधु	समझना	मिथ्यात्व
६	असाधु	को	साधु	समझना	मिथ्यात्व

७	ससारमार्ग को मोक्षमार्ग समझना	मिथ्यात्व
८	मोक्षमार्ग को ससारमार्ग समझना	मिथ्यात्व
९	मुक्त को अमुक्त समझना	मिथ्यात्व
१०	अमुक्त को मुक्त समझना	मिथ्यात्व



१४

बोल चौदहवाँ : नव तत्त्व के ११५ भेद

नव तत्त्व

१	जीव तत्त्व	५	आस्रव तत्त्व
२	अजीव तत्त्व	६	सवर तत्त्व
३	पुण्य तत्त्व	७	निर्जरा तत्त्व
४	पाप तत्त्व	८	बन्ध तत्त्व

९ मोक्ष तत्त्व

जीव तत्त्व के चौदह भेद

१ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त
२ सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त
३ बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त

४	वादर एकेन्द्रिय	अपर्याप्त
५	द्वीन्द्रिय	पर्याप्त
६	द्वीन्द्रिय	अपर्याप्त
७	त्रीन्द्रिय	पर्याप्त
८	त्रीन्द्रिय	अपर्याप्त
९	चतुरिन्द्रिय	पर्याप्त
१०	चतुरिन्द्रिय	अपर्याप्त
११	असज्ञी पञ्चेन्द्रिय	पर्याप्त
१२	असज्ञी पञ्चेन्द्रिय	अपर्याप्त
१३	सज्ञी पञ्चेन्द्रिय	पर्याप्त
१४	सज्ञी पञ्चेन्द्रिय	अपर्याप्त

अजीव तत्त्व के चौदह भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद

१ स्कन्ध　　२ देश

३ प्रदेश

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद

१ स्कन्ध　　२ देश

३ प्रदेश

आकाशास्ति काय के तीन भेद

१ स्कन्ध　　२ देश

३ प्रदेश

१ दशवा काल

पुद्गलास्ति काय के चार भेद

१ स्कन्ध　　३ प्रदेश
२ देश　　४ परमाणु

पुण्य तत्त्व के नव भेद

१ अन्न पुण्य　　५ वस्त्र पुण्य
२ पान पुण्य　　६ मन पुण्य
३ स्थान पुण्य　　७ वचन पुण्य
४ शय्या पुण्य　　८ काय पुण्य
९ नमस्कार पुण्य

पाप तत्त्व के अठारह भेद

१ प्राणातिपात　　४ मैथुन
२ मृषावाद　　५ परिग्रह
३ अदत्तादान　　६ क्रोध

७	मान	१३	अभ्याख्यान
८	माया	१४	पैशुन्य
९	लोभ	१५	पर-परिवाद
१०	राग	१६	रति-अरति
११	द्वेष	१७	मायामृषा
१२	कलह	१८	मिथ्यादर्शन

आस्रव तत्त्व के बीस भेद

पाच अव्रत

१	प्राणातिपात	३	अदत्तादान
२	मृषावाद	४	मैथुन

५ परिग्रह

पाच इन्द्रिय

१ श्रोत्र इन्द्रिय - प्रवृत्ति
२ चक्षुष् इन्द्रिय - प्रवृत्ति
३ घ्राण इन्द्रिय - प्रवृत्ति
४ रसन इन्द्रिय - प्रवृत्ति
५ स्पर्शन इन्द्रिय - प्रवृत्ति

पाच आस्रव

१ मिथ्यात्व आस्रव
२ अविरति आस्रव
३ प्रमाद आस्रव
४ कषाय आस्रव
५ अशुभ योग आस्रव

तीन योग

१ मन - प्रवृत्ति
२ वचन - प्रवृत्ति
३ काय - प्रवृत्ति

दो अयतना

१ भाण्डोपकरण, अयतना से लेना, रखना।
२ सूचि कुशाग्रमात्र, अयतना से लेना, रखना।

संवर तत्त्व के बीस भेद

पाच व्रत

१ प्राणातिपात - विरमण
२ मृषावाद - विरमण

३ अदत्तादान - विरमण
४ अब्रह्मचर्य - विरमण
५ परिग्रह - विरमण

पाच इन्द्रिय

१ श्रोत्र इन्द्रिय - निग्रह
२ चक्षुप् इन्द्रिय - निग्रह
३ घ्राण इन्द्रिय - निग्रह
४ रसन इन्द्रिय - निग्रह
५ स्पर्शन इन्द्रिय - निग्रह

पाच सवर

१ सम्यक्त्व सवर
२ विरति संवर
३ अप्रमाद सवर
४ अकपाय सवर
५ शुभ योग सवर

तीन योग

१ मनो - निग्रह
२ वचन - निग्रह
३ काय - निग्रह

दो यतना

१ भाण्डोपकरण, यतना से लेना, रखना।
२ सूचि कुशाग्र मात्र, यतना से लेना, रखना।

निर्जरा तत्त्व के बारह भेद

१ अनशन तप
२ ऊनोदरी तप
३ भिक्षाचरी तप
४ रस-परित्याग तप
५ काय क्लेश तप
६ प्रति सलीनता तप

७ प्रायश्चित्त तप
८ विनय तप
९ वैयावृत्य तप
१० स्वाध्याय तप
११ ध्यान तप
१२ व्युत्सर्ग तप

बन्ध तत्त्व के चार भेद

१ प्रकृति बन्ध
२ स्थिति बन्ध

३ अनुभाग बन्ध

४ प्रदेश बन्ध

मोक्ष-तत्त्व के चार भेद

१ सम्यग् ज्ञान

२ सम्यग् दर्शन

३ सम्यक् चारित्र

४ सम्यक् तप



१५

बोल पन्द्रहवाँ : आत्मा आठ

१ द्रव्य आत्मा

२ कषाय आत्मा

३ योग आत्मा

४ उपयोग आत्मा

५ ज्ञान आत्मा

६ दर्शन आत्मा

७ चारित्र आत्मा

८ वीर्य आत्मा



बोल सोलहवाँ : दण्डक चौबीस

सात नरक का एक दण्डक

१ रत्न प्रभा
२ शर्करा प्रभा
३ वालुका प्रभा
४ पङ्क प्रभा
५ धूम प्रभा
६ तम प्रभा
७ महातम प्रभा

दश भवन-पति के दश दण्डक

१ असुर कुमार
२ नाग कुमार
३ सुपर्ण कुमार
४ विद्युत् कुमार
५ अग्नि कुमार
६ द्वीप कुमार
७ उदधि कुमार
८ दिशा कुमार

९ पवन कुमार

१० स्तनित कुमार

पांच स्थावर के पाच दण्डक

१ पृथ्वी काय

२ अप् काय

३ तेजस् काय

४ वायु काय

५ वनस्पति काय

तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक

१ द्वीन्द्रिय

२ त्रीन्द्रिय

३ चतुरिन्द्रिय

अन्तिम पाच दण्डक

१ तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का एक दण्डक

१ मनुष्य का एक दण्डक

१ व्यन्तर देव का एक दण्डक

१ ज्योतिप देव का एक दण्डक

१ वैमानिक देव का एक दण्डक



१७
बोल सतरहवाँ : लेश्या छह

१ कृष्ण लेश्या
२ नील लेश्या
३ कापोत लेश्या
४ तेजो - लेश्या
५ पद्म लेश्या
६ शुक्ल लेश्या



१८
बोल अठारहवाँ : दृष्टि तीन

१ सम्यग् दृष्टि
२ मिथ्यादृष्टि
३ मिश्र दृष्टि



१९

बोल उन्नीसवाँ : ध्यान चार

१ आर्त ध्यान
२ रौद्र ध्यान
३ धर्म ध्यान
४ शुक्ल ध्यान

*

२०

बोल बीसवाँ - षड् द्रव्य के तीस भेद

धर्मास्तिकाय के पाँच बोल

१ द्रव्य से एक
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी।
५ गुण से चलन गुण,
जल मे मछली का दृष्टान्त

अधर्मास्ति काय के पाँच बोल

१ द्रव्य से एक
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण

३ काल से आदि-अन्त-रहित

४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी,

५ गुण से स्थिर गुण,
श्रान्त पथिक को छाया का दृष्टान्त

आकाशास्ति काय के पाच बोल

१ द्रव्य से एक

२ क्षेत्र से लोकालोक-प्रमाण

३ काल से आदि-अन्त-रहित

४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोका-लोक-व्यापी,

५ गुण से अवकाश-दान गुण,
दूध मे बताशे का दृष्टान्त

काल द्रव्य के पाच बोल

१ द्रव्य से एक

२ क्षेत्र से अढाई द्वीप प्रमाण

३ काल से आदि-अन्त-रहित

४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, अजीव, शाश्वत, अढाई द्वीप-वर्ती

५ गुण से वर्तना गुण,
नये को पुराना करे,
नये पुराने कपड़े का दृष्टान्त

जीवास्तिकाय के पाच बोल

१ द्रव्य से अनन्त
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, जीव, शाश्वत, लोकवर्ती
५ गुण से उपयोग गुण,
चन्द्र की कला का दृष्टान्त

पुद्गलास्तिकाय के पाच बोल

१ द्रव्य से अनन्त
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-सहित
रूपी, अजीव, शाश्वत, लोकवर्ती
५ गुण से पूरण-गलन-गुण,
मिलते-बिखरते बादल का दृष्टान्त



२१

बोल इक्कीसवाँ : राशि दो

१ जीव राशि
२ अजीव राशि

*

२२

बोल बाईसवाँ : श्रावक के बारह व्रत

पाच अणुव्रत

१ अहिंसा अणु व्रत
२ सत्य अणु व्रत
३ अस्तेय अणु व्रत
४ ब्रह्मचर्य अणु व्रत
५ अपरिग्रह अणु व्रत

तीन गुण व्रत

१ दिशा व्रत
२ भोगोपभोग-परिमाण व्रत
३ अनर्थ-दण्ड-विरमण व्रत

चार शिक्षा व्रत

१	सामायिक	व्रत
२	देशावकाशिक	व्रत
३	पौषध	व्रत
४	अतिथि संविभाग	व्रत

★

२३

बोल तेईसवाँ : साधु के पाँच महाव्रत

१	अहिंसा	महाव्रत
२	सत्य	महाव्रत
३	अस्तेय	महाव्रत
४	ब्रह्मचर्य	महाव्रत
५	अपरिग्रह	महाव्रत

★

२४

बोल चौबीसवाँ : प्रत्याख्यान के ४९ भंग

अंक ११ भंग नव—एक करण, एक योग से कथन

१	करूँ	नहीं,	मन से
२	करूँ	नहीं,	वचन से
३	करूँ	नहीं,	काय से

४ कराऊँ नही, मन से
५ कराऊँ नही, वचन से
६ कराऊँ नही, काय से

७ अनुमोदूँ नही, मन से
८ अनुमोदूँ नही, वचन से
९ अनुमोदूँ नही, काय से

अक १२ भग नव—एक करण दो योग से कथन

१ करूँ नही, मन से, वचन से
२ करूँ नही, मन से, काय से
३ करूँ नही, वचन से, काय से

४ कराऊँ नही, मन से, काय से
५ कराऊँ नही, मन से, वचन से
६ कराऊँ नही, वचन से, काय से

७ अनुमोदूँ नही, मन से, वचन से
८ अनुमोदूँ नही, मन से, काय से
९ अनुमोदूँ नही, वचन से, काय से

अक १३ भग तीन—एक करण तीन योग से कथन

१ करूँ नही मन से, वचन से, काय से
२ कराऊँ नही, मन से, वचन से, काय से
३ अनुमोदूँ नही, मन से, वचन से, काय से

अक २१ भग नव—दो करण एक योग से कथन

१ करूँ नही, कराऊँ नही, मन से
२ करूँ नही, कराऊँ नही, वचन से
३ करूँ नही, कराऊँ नही, काय से
४ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से
५ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से
६ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, काय से
७ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से
८ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से
९ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, काय से

अक २२ भग नव—दो करण दो योग से कथन

१ करूँ नही, कराऊँ नही, मन से, वचन से
२ करूँ नही, कराऊँ नही, मन से, काय से
३ करूँ नही, कराऊँ नही, वचन से, काय से
४ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से, वचन से
५ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से, काय से
६ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से, काय से
७ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से, वचन से
८ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से, काय से
९ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से, वचन से

अक २३ भग तीन—दो करण तीन योग से कथन

१ करूँ नही, कराउँ नही,
मन से, वचन से, काय से

२ करूँ नही, अनुमोदूँ नही,
मन से, वचन से, काय से

३ कराउँ नही, अनुमोदूँ नही,
मन से, वचन से, काय से

अक ३१ भग तीन—तीन करण एक योग से कथन

१ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से

२ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से

३ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, काय से

अक ३२ भग तीन—तीन करण दो योग से कथन

१ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही,
मन से, वचन से

२ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही,
मन से, काय से

३ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही;
वचन से, काय से

अंक २३ भंग एक—तीन करण, तीन योग से कथन

१ करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं

मन से, वचन से, काय से

*

२५

बोल पच्चीसवाँ : चारित्र पांच

१ सामायिक चारित्र

२ छेदोपस्थापन चारित्र

३ परिहार विशुद्धि चारित्र

४ सूक्ष्म संपराय चारित्र

५ यथाख्यात चारित्र

*

पच्चीस बोल

[व्याख्या]

१

बोल पहला : गति चार

१ नरक गति — ३ मनुष्य गति
२ तिर्यञ्च गति — ४ देव गति

व्याख्या

ससार मे अनन्त जीव हैं। साधारण व्यक्ति के लिए सबको जानना और वर्णन कर सकना सम्भव नही है। केवली–भगवान् ही अपने अनन्त ज्ञान से अनन्त जीवो को जान-देख सकते हैं। अल्पज्ञ जीव मे वैसा सामर्थ्य नही है, कि वह समस्त जीवो को जान सके, देख सके। क्योकि अल्पज्ञ जीव के पास ज्ञान का साधन है—इन्द्रिय। इन्द्रियो द्वारा सूक्ष्म और अतीन्द्रिय पदार्थों को जाना नही जा सकता।

फिर, एक अल्पज्ञ आत्मा जीवो का परिज्ञान कैसे करे? शास्त्रकार ने इसी प्रश्न के समाधान के लिए अनन्त जीवो का चार विभागो मे वर्गीकरण कर दिया है। संसार के समग्र जीव इस में समाहित हो जाते हैं। ससारस्थ एक भी जीव ऐसा नही रहता जो इस बोल मे न आ जाता हो।

लोक-भाषा मे गति का अर्थ है—गमन, चलना-फिरना। एक स्थान से दूसरे स्थान मे जाना। परन्तु यहाँ पर गति का



एक विशेष पारिभाषिक अर्थ ग्रहण किया गया है। एक भव से दूसरे भव की प्राप्ति को गति कहा गया है। जब एक आत्मा मनुष्य-भव के आयुष्य को पूर्ण करके देव-भव मे जाने को प्रस्थान करता है तो उस क्षण से लेकर जब तक वह देव-भव मे रहता है, तब तक की वह अवस्था-विशेष देव-गति कहलाती है। इसी प्रकार मनुष्य गति, तिर्यंच गति और नरक गति के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

'नाम-कर्म' की उत्तर प्रकृतियों मे, 'गति-नाम' एक प्रकृति है। उस गति-नाम कर्म के उदय से जीव कभी नरक में, कभी तिर्यञ्च में, कभी मनुष्य मे और कभी देव योनि मे जन्म ग्रहण करता है। अत ये सब संसारी जीव की अशुद्ध पर्याय है, जो गति नाम कर्म के उदय से होती रहती है। शुद्ध दृष्टि से जीव, केवल शुद्ध जीव है, नारक आदि नही।

जैन दर्शन में, आत्मा के दो रूप माने गए है—मुक्त और ससारस्थ। मुक्त आत्मा वह है, जो कर्मों से रहित हो चुका है। वह शुद्ध है, निरञ्जन है, मल-रहित है। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्मा को सिद्ध कहते हैं। जो एक बार ससार से मुक्त हो गया, वह फिर कभी ससार मे नही आता। मुक्त एव सिद्ध आत्माएँ अनन्त है और अनन्त होगी।

परन्तु जो आत्माएँ अभी तक कर्म-बन्धनों मे बद्ध हैं, वे अशुद्ध है, कर्म-सहित है, मल-सहित हैं। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्माओ को ससारस्थ कहते है। प्रस्तुत बोल मे इन्ही संसारी आत्माओं का वर्णन किया गया है। ससारी आत्माएँ चार ही प्रकार की हो सकती हैं—नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव।

नारक

नरक-भूमि के वासी जीव *नारक* कहे जाते हैं। नरक-भूमि सात हैं, जो इस प्रकार हैं—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और महातम प्रभा।

नरक एक ऐसा स्थान है, जहाँ जीव अपने अशुभ कर्मो का फल पाता है। नारक जीवो मे अशुद्ध लेश्या और अशुद्ध परिणाम होते हैं। नरक की वेदना तीन प्रकार की होती है—क्षेत्र-स्वभाव जन्म शीतादि, परस्परजन्य और असुरजन्य।

असज्ञी जीव मरकर पहली भूमि तक, भुजपरिसर्प दूसरी तक, पक्षी तीसरी तक, सिह चौथी तक, सर्प पाँचवी तक, नारी छठी तक और मनुष्य एव मत्स्य सातवी तक जा सकते हैं।

नारक जीव मरकर नारक और देव नही बन सकते। तिर्यञ्च और मनुष्य ही बन सकते हैं।

तिर्यञ्च

नारक, मनुष्य और देव को छोड कर शेष जितने भी ससारी जीव हैं, वे तिर्यञ्च कहे जाते हैं। नरक-गति की तरह तिर्यञ्च गति भी पापमूलक मानी जाती है। तिर्यञ्च जीवो के तीन भेद हैं— जलचर, स्थलचर, और खेचर।

एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव भी तिर्यञ्च योनि मे समाविष्ट हो जाते हैं। मनुष्य, देव तथा नारक को छोड़कर शेष समस्त पचेन्द्रिय त्रस जीव भी तिर्यञ्च गति मे हैं। लोक-

भाषा मे, पशु, पक्षी और कीट-पतगे आदि जीव तिर्यञ्च है। तिर्यञ्च अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार प्रायः चारो गतियो मे जा सकते हैं।

मनुष्य

शास्त्र मे मनुष्य-जन्म को सर्व-श्रेष्ठ और सर्व-ज्येष्ठ कहा गया है। इस का मुख्य कारण यह है, कि मनुष्य अपनी सयम साधना से मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है, जबकि अन्य गतियों में यह सम्भव नही है। गुण-स्थान की दृष्टि से भी नारक और देव चतुर्थ गुण-स्थान से आगे नही बढ सकते। तिर्यञ्च का विकास पाचवे से आगे नही। परन्तु मनुष्य में समस्त गुण-स्थान सम्भवित हैं। अत मनुष्य जन्म सर्वश्रेष्ठ एव सर्वज्येष्ट है।

जन्म के आधार पर मनुष्यो के दो भेद हैं—गर्भज और सम्मूर्च्छिम। माता और पिता के सयोग से जो जन्म मिलता है, वह गर्भज कहा जाता है। मनुष्य और तिर्यञ्च मे ही यह होता है। माता और पिता के सयोग के बिना जो मल-मूत्रादि मे मानवाकार प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं, वे संमूर्च्छिम कहे जाते है। मनुष्य की तरह तिर्यञ्च भी सम्मूर्च्छिम होते है और ये दोनो मनोरहित होने से असंज्ञी ही होते हैं।

भूमि के आधार पर मनुष्यो के दो भेद किये गए है—भोग-भूमिज तथा कर्मभूमिज। भोग-भूमि वह है, जहा असि-कर्म, मसि-कर्म और कृषि-कर्म नही होते। और जहा ये होते है, वह कर्म भूमि है।

सस्कृति और सभ्यता के आधार पर भी मनुष्यो के भेद किये गये हैं। जैसे कि आर्य और म्लेच्छ। मनुष्य भी मर कर प्राय चारो गतियो मे जा सकता है।

देव

देव शब्द भारतीय सस्कृति एव साहित्य मे चिरपरिचित है। देवगति में सुख माना गया है। वहाँ शुभ लेश्या और शुभ परिणाम माने गए है। वहाँ प्राय सातावेदनीय कर्म का उदय माना गया है।

देवो के चार भेद है—भवन पति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। देव मरकर न देव हो सकता है और न नारक। किन्तु अपने शुभाशुभ कर्मों के कारण मनुष्य या तिर्यञ्च गति मे जन्म ले सकता है।

गतियों के कारण

सक्षेप मे नरक गति के कारण हैं—महारम्भ, महापरिग्रह। तिर्यञ्च गति का कारण है—माया। मनुष्य गति का कारण है—अल्पारम्भ, अल्पपरिग्रह। देव गति का कारण है—सराग-संयम, सयमासयम—श्रावकत्व बालतप, और अकाम निर्जरा आदि।



२

बोल दूसरा : जाति पाँच

१ एकेन्द्रिय जाति　　३ त्रीन्द्रिय जाति
२ द्वीन्द्रिय जाति　　४ चतुरिन्द्रिय जाति
५ पञ्चेन्द्रिय जाति

व्याख्या

जीव अनन्त हैं। वे सभी समान नही हैं। विकास-क्रम के आधार पर समग्र ससारी जीवो को पाँच विभागो मे विभक्त किया गया है। समस्त जीवो मे चैतन्य गुण समान होने पर भी उस गुण की अभिव्यक्ति मे साधनभूत इन्द्रियो के विकास-क्रम को लेकर ही संसारी जीवो के यहाँ पर पाँच भेद किये गये हैं।

जाति शब्द के दो अर्थ हैं—जन्म और समूह। यहाँ पर समूह अर्थ ही ठीक बैठता है। एकेन्द्रिय जाति का अर्थ है—ऐसे प्राणियों का समूह जिन के केवल एक ही इन्द्रिय है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जाति तक का अर्थ समझ लेना चाहिए।

इन्द्रिय शब्द का अर्थ है—ज्ञान का साधन। जिस के द्वारा आत्मा को पदार्थों का ज्ञान होता है।

इन्द्रियाँ कितनी हैं? पाँच। कुछ लोगो की मान्यता है, कि मन भी इन्द्रिय है। फिर पाँच ही क्यो? मन इन्द्रिय अवश्य है पर वह अन्तरग है। यहाँ पर जीवों के जो पाँच भेद किये गए हैं, वे बहिरग इन्द्रियो के आधार पर ही किए है।

नाम कर्म को उत्तर प्रकृतियो मे, जाति नाम कर्म भी एक प्रकृति है। उसके उदय से ही जीवो को एकेन्द्रिय आदि मे जन्म ग्रहण करना पडता है।

एकेन्द्रिय जीव—पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति।

द्वीन्द्रिय जीव—लट, सीप, शख, कृमि, घुण आदि।

त्रीन्द्रिय जीव—चीटी, चीचड, जू, लीख, मकोडा आदि।

चतुरिन्द्रिय जीव—मक्खी, मच्छर, भवरा, बिच्छू आदि।

पंचेन्द्रिय जीव—नारक, पशु आदि, मनुष्य, देव।



३

बोल तीसरा : काय छह

१ पृथ्वी काय	४ वायु काय
२ अप् काय	५ वनस्पति काय
३ तेजस काय	६ त्रस काय

व्याख्या

विभिन्न प्रकार के पुद्गलो से बने शरीरो के द्वारा जीव के जो विभाग होते हैं, उन्हे काय कहते हैं।

पृथ्वी है काय जिन की, वे जीव पृथ्वी काय हैं। अप् (जल) है काय जिनकी, वे जीव अप् काय। तेजस् (अग्नि) है काय जिन

की वे जीव, तेजस् काय। वायु है काय जिनकी, वे जीव, वायु काय। वनस्पति है काय जिनकी, वे जीव, वनस्पति काय। त्रस (गमन-चलन क्रिया युक्त) है काय जिनकी, वे जीव, त्रस काय।

जीव-विज्ञान पर जितना अनुसन्धान जैन शास्त्रों मे मिलता है, उतना अन्यत्र नही। अहिंसा-मूलक धर्म के लिए यह आवश्यक भी था, और आज भी है। हिंसा से बचने के लिए जीवों का स्वरूप और जीवो के भेदो को जानना अत्यन्त आवश्यक है।

शास्त्र मे, जीवो के मुख्य रूप से दो भेद है—स्थावर और त्रस। प्रथम के पाँच काय स्थावर हैं। स्थावर का स्थूल अर्थ है, स्थिर रहने वाले, एक ही स्थान पर स्थित। जैसे वृक्ष आदि। जो जीव हलन-चलन की क्रिया करते हैं, वे त्रस हैं। द्वीन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक के जीव त्रस है। सिद्धान्तानुसार स्थावर नाम कर्म का उदय जिन को हो, वे जीव स्थावर हैं, और जिन को त्रस नाम कर्म का उदय हो, वे जीव त्रस हैं। स्थावर एव त्रस को मिलाकर जीवो के छह भेद हो जाते है। आगम मे इसी को षड् जीव निकाय कहा है।

पृथ्वी काय—मिट्टी, मुरड, हिंगुल, हरताल, हीरा, पन्ना, सोना, चाँदी आदि सब पृथ्वीकायिक जीव हैं। मिट्टी के एक कण मे भी असंख्य पृथक्-पृथक् जीव होते हैं। पृथ्वी कायिक जीवों को स्व-पर शस्त्र न लगे, तब तक पृथ्वी सचित्त है। वही शस्त्र लगने पर अचित्त हो जाती है। यही क्रम जल, तेजस्, वायु और वनस्पति काय के सम्बन्ध मे भी है।

अप् काय—वर्षा का जल, ओस का जल, गढे का पानी, कुवा-बावडी का पानी, ताल-झील व नदी का पानी आदि सब अप्कायिक जीव है।

तेजस्काय—भाड की अग्नि, झाल की अग्नि, वास की अग्नि, उल्का-पात आदि सब तेजस्कायिक जीव हैं।

वायु काय—उत्कलिका वायु, मण्डलिका वायु, घन वायु, गुञ्जा वायु आदि सब वायु-कायिक जीव हैं।

वनस्पति काय—वृक्ष, लता, कन्द, मूल आदि वनस्पति काय है। इसके दो भेद हैं—साधारण और प्रत्येक।

साधारण वनस्पति—जहाँ एक शरीर मे अनन्त जीव वास करते हो, उसे साधारण वनस्पति-काय कहते हैं। कन्द, मूल' आलू, मूली, अदरक आदि अनन्तकायिक साधारण वनस्पति है।

प्रत्येक वनस्पति—जिस के एक शरीर मे एक जीव हो। लता, बेल, तृण, वृक्ष आदि प्रत्येक वनस्पति हैं। क्योंकि इनमें प्रत्येक जीव अपने शरीर का स्वतन्त्र स्वामी है।

त्रस काय—द्वीन्द्रिय से पञ्चेद्रिय तक के सभी जीव त्रस काय हैं।



४

बोल चौथा : इन्द्रिय पाँच

१ श्रोत्रेन्द्रिय　　३ घ्राणेन्द्रिय
२ चक्षुरिन्द्रिय　　४ रसनेन्द्रिय
५ स्पर्शनेन्द्रिय

व्याख्या

समस्त ससारी जीवो मे समान इन्द्रियाँ नही होती है। किसी मे एक, किसी मे दो, किसी में तीन, किसी में चार और किसी मे पांच। किसी जीव मे पाँच से अधिक इन्द्रिय नही हो सकती। क्योंकि इन्द्रियाँ पाँच ही है। यहाँ पर इन्द्रियो के आधार पर ससारी जीवो का वर्गीकरण किया गया है।

आत्मा को इन्द्र कहते हैं, क्यो कि वह ज्ञानादि ऐश्वर्य से सम्पन्न है। इन्द्र जिस चिन्ह से जाना जाता है, अथवा जो इन्द्र के ज्ञान का साधन है, उसे इन्द्रिय कहा गया है, और वे संख्या मे पाच हैं—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षुष्, और श्रोत्र।

श्रोत्र—जिस इन्द्रिय से शब्द का ज्ञान किया जाता है, सुना जाता है, वह श्रोत्र इन्द्रिय है, अर्थात् कर्ण—Sense of hearing (Ears)

चक्षुष्—जिस इन्द्रिय से रूप का ज्ञान किया जाता है, देखा जाता है, वह चक्षुष् इन्द्रिय है, अर्थात् नेत्र—Sense of sight (Eyes)



घ्राण—जिस इन्द्रिय से गन्ध का ज्ञान किया जाता है, सूँघा जाता है, वह घ्राण इन्द्रिय है, अर्थात् नाक—Sense of smell (Nose)

रसन—जिस इन्द्रिय से रस का ज्ञान किया जाता है, अर्थात् स्वाद लिया जाता है, वह रसन इन्द्रिय है, अर्थात् जिह्वा—Sense of test (Tongue)

स्पर्शन—जिस इन्द्रिय से स्पर्श का ज्ञान किया जाता है, वह स्पर्शन इन्द्रिय है, अर्थात् त्वचा—Sense of Touch

इन्द्रियो की तरह मन भी ज्ञान का साधन है, फिर इस को इन्द्रिय क्यो नही माना गया? मन ज्ञान का साधन अवश्य है, परन्तु फिर भी रूप आदि विषयो मे प्रवृत्त होने के लिए मन को चक्षु आदि इन्द्रियों का सहारा लेना पडता है। यद्यपि मन स्वतन्त्र रूप से भी अपने चिन्त्य विषय को ग्रहण करता है, फिर भी अधिकतर मन का कार्य इन्द्रियो द्वारा गृहीत विषय का चिन्तन करना मात्र है। अत उसे इन्द्रिय न मान कर अनिन्द्रिय (इन्द्रिय जैसा) कहा गया है।

यद्यपि मन पशु और पक्षी आदि मे भी होता है, तथापि मन की सब से विकसित अवस्था मनुष्य मे देखी जाती है। क्योकि मनुष्य का नाडी-तन्त्र Nervous system दूसरे प्राणियो की अपेक्षा अधिक विकसित है। मनुष्य मे Mental power अन्य प्राणियो से श्रेष्ठ है।

मनोविज्ञान के अनुसार मन के तीन भाग हो सकते हैं—चेतन मन conscious, चेतनोन्मुख Pre-conscious और अचेतन Un-conscious

चेतन मन, मन का वह भाग है, जिस मे मन की समस्त ज्ञात क्रियाएं चला करती हैं। चलना, फिरना, बोलना, लिखना, पढना और सोचना आदि क्रियाओ का नियन्त्रण चेनन मन करता है।

चेतन मन के परे चेतनोन्मुख मन है। मे वे भावनाएँ, स्मृतियाँ, इच्छाएं तथा वेदनाएँ रहती है, जो प्रकाशित नही हैं, किन्तु वे चतना पर आने के लिए तत्पर है।

चेतनोन्मुख मन के परे अचेतन मन है। विचार तथा भावनाएँ न हमे ज्ञात रहती है; और न सहज भाव से बाहर ही आती हैं। प्रयत्न-विशेष मे ही वे चेतना स्तर पर आती है।

शास्त्र मे मन के दो भेद हैं—द्रव्य और भाव। द्रव्य मन पुद्गलमय होने से जड है–और भाव मन चेतनमय, क्योकि भाव मन ज्ञानावरण का एक क्षयोपशम-विशेष है।



५

बोल पाँचवाँ : पर्याप्ति छह

१ आहार पर्याप्ति	४ श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति
२ शरीर पर्याप्ति	५ भाषा पर्याप्ति
३ इन्द्रिय पर्याप्ति	६ मन पर्याप्ति

व्याख्या

पर्याप्ति आत्मा की एक शक्ति-विशेष है। आत्मा जिस शक्ति से पुद्गलो को ग्रहण करता है और उन्हे शरीर आदि रूप मे परिणत करता है, उसे पर्याप्ति कहते हैं। इस के छह भेद है।

आहार पर्याप्ति—जिस शक्ति से जीव आहार योग्य बाह्य पुद्गलो को ग्रहण कर उन को खल और रस रूप मे बदलता है।

शरीर पर्याप्ति—जिस शक्ति के द्वारा जीव रस रूप मे परिणत आहार को रक्त, मास, मज्जा और वीर्य आदि धातुओ में बदलता है।

इन्द्रिय पर्याप्ति—जिस शक्ति से जीव सात धातुओ को स्पर्शन, रसन आदि इन्द्रियो मे बदलता है।

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति—जिस शक्ति के द्वारा जीव श्वास और उच्छ्वास योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है, और छोडता है।

भाषा पर्याप्ति—जिस शक्ति के द्वारा जीव भाषा योग्य भाषा वर्गणा के पुद्गलो को ग्रहण करके भाषा रूप मे परिणत कर के छोडता है।

मनः पर्याप्ति—जिस शक्ति के द्वारा जीव मनोयोग्य मनो-वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके मन रूप में बदलता और छोड़ना है।

किन जीवों के कितनी पर्याप्ति होती है? एकेन्द्रिय जीव के भाषा और मन को छोड कर शेष सभी है। विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक) और असज्ञी पञ्चेन्द्रिय के मन को छोडकर शेष समस्त पर्याप्ति है। सज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव के छहों पर्याप्ति होती है।

संसारी जीवों मे ये पर्याप्ति कम से कम चार और अधिक से अधिक छह होती हैं। कोई भी जीव जब अपर्याप्त-दशा मे मरता है, तब वह कम से कम प्रथम की तीन पर्याप्ति तो अवश्य ही पूरी करता है।

पर्याप्ति के आधार पर जीवों के दो भेद किये हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। जिस जीव ने स्व-योग्य पर्याप्ति को पूर्ण कर लिया है, वह पर्याप्त कहा जाता है।

अपर्याप्त वह है, जो स्व-योग्य पर्याप्ति को पूर्ण नही कर पाया है।





६

बोल छठा : प्राण दस

१ श्रोत्र बल प्राण
२ चक्षुष् बल प्राण
३ घ्राण बल प्राण
४ रसन बल प्राण
५ स्पर्शन बल प्राण
६ मन बल प्राण
७ वचन बल प्राण
८ काय बल प्राण
९ श्वासोच्छ्वास बल प्राण
१० आयुष्य बल प्राण

व्याख्या

प्राण अर्थात् जीवन जीने की शक्ति। जिस शक्ति के सयोग से जीव जीवित रहे, और वियोग से मर जाय; वह प्राण है। प्राण जीव के बाह्य लक्षण हैं। प्राणो के बिना जीव जीवित नही रहता।

शास्त्र मे प्राण के दो भेद हैं—द्रव्य और भाव। जो प्राण केवल ससार अवस्था मे ही मिलता है, मुक्त दशा में नही; वह द्रव्य प्राण कहा जाता है। द्रव्य प्राण के दश भेद हैं।

पाँच इन्द्रिय, तीन योग और श्वासोच्छ्वास तथा आयुष्य ये सब मिलकर दश द्रव्य प्राण है।

जो प्राण मुक्त दशा मे भी आत्मा के साथ रहते हैं, वे भाव प्राण हैं। क्योंकि वे आत्मा के निज स्वरूप है। जैसे कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य।

यहाँ पर प्रत्येक शब्द के साथ बल लगा है। बल का अर्थ है, शक्ति-विशेष। छूने की शक्ति, चखने की शक्ति, सूँघने की शक्ति, देखने की शक्ति और सुनने की शक्ति। यह इन्द्रिय प्राण है।

विचार करने की शक्ति, बोलने की शक्ति, और चलने-फिरने आदि शारीरिक शक्ति। ये तीन योग रूप प्राण है।

जीव जिस शक्ति से बाहर की वायु को अन्दर खीचता है, और अन्दर की वायु को बाहर फेंकता है, वह क्रमश श्वास और उच्छ्वास है।

जिस शक्ति के अस्तित्व से जीव जीवित रहता है, और जिस के असद् भाव से जीव मर जाता है वह आयुष्य प्राण है। दशो प्राणो मे आयुष्य प्राण सब से मुख्य है। इसके अभाव मे दूसरे प्राणो का कोई महत्त्व नही रहता।

किस जीव में कितने प्राण हो सकते है? इसके समाधान मे शास्त्र मे कहा गया है, कि—

एकेन्द्रिय जीव में चार प्राण हैं—स्पर्शन इन्द्रिय, काय, श्वासोच्छ्वास और आयुष्य।

द्वीन्द्रिय जीव मे छह प्राण है—चार पूर्वोक्त तथा रसन-इन्द्रिय और वचन।

त्रीन्द्रिय जीव में सात प्राण है—छह पूर्वोक्त और घ्राणेन्द्रिय।

चतुरिन्द्रिय जीव में आठ प्राण हैं—सात पूर्वोक्त और चक्षुरिन्द्रिय।

असज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव मे नव प्राण हैं—आठ पूर्वोक्त और श्रोत्र इन्द्रिय।

सज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव मे दश प्राण है—नव पूर्वोक्त और दशवाँ मन।

★

७

बोल सातवाँ : शरीर पाँच

१ औदारिक शरीर
२ वैक्रिय शरीर
३ आहारक शरीर
४ तैजस शरीर
५ कार्मण शरीर

व्याख्या

आत्मा जिस के द्वारा पूर्व-सचित कर्मो को भोगता है, उसे शरीर कहते है। "भोगायतन शरीरम्।" अर्थात् शरीर भोग का आयतन है, स्थान है।

ससार अवस्था मे इन पाँच शरीरो मे से कोई न कोई शरीर अवश्य ही रहता है। एक जन्म से दूसरे जन्म को ग्रहण करते समय अन्तराल गति मे भी तैजस और कार्मण शरीर रहते हैं। क्योकि विना शरीर के जन्म और मरण हो कैसे सकता है।

औदारिक शरीर—उदार (स्थूल) पुद्गलो से बना शरीर।



अथवा प्रधान पुद्गलो से बना शरीर। तीर्थङ्कर आदि का शरीर प्रधान पुद्गलो से बनता है। शेप सर्व साधारण जीवो का शरीर स्थूल असार पुद्गलो से बना होता है।

वैक्रिय शरीर—जिस शरीर से विविध और विशिष्ट प्रकार की क्रियाएँ होती है। जैसे एक रूप से अनेक रूप करना। अणु से विराट् करना। दृश्य से अदृश्य करना, आदि।

आहारक शरीर—आहारक लब्धि से बनाया गया शरीर। जीव दया, तीर्थङ्कर की ऋद्धि का दर्शन तथा सशय निवारण आदि विशेप प्रयोजन से चतुर्दश पूर्वधर मुनि अपनी आहारक लब्धि से जो शरीर बनाते हैं, वह आहारक शरीर होता है।

तैजस शरीर—तैजस पुद्गलो से बना हुआ शरीर, शरीर मे विद्यमान उष्णता से इस शरीर का अस्तित्व सिद्ध होता है। यह शरीर आहार का पाचन करता है। तपोविशेप से प्राप्त तैजस लब्धि का कारण भी यही शरीर है।

कार्मण शरीर—कार्मण वर्गणाओ से बना शरीर। अथवा जीव के प्रदेशो के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्म पुद्गलो को कार्मण शरीर कहते है। यह शरीर ही सब शरीरो का बीज है।

प्रथम तीन शरीरो के अग, उपाग और अंगोपाग होते है। तैजस और कार्मण के नही। क्योंकि वे सूक्ष्म शरीर हैं। इन पाचो में पूर्व से उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं और उत्तर से पूर्व-पूर्व शरीर स्थूल है। सब से स्थूल औदारिक और सब शरीरो मे सूक्ष्म शरीर कार्मण है।

८

बोल आठवाँ : योग पन्द्रह

चार मन के —

१ सत्य मनो योग
२ असत्य मनोयोग
३ मिश्र मनोयोग
४ व्यवहार मनोयोग

चार वचन के —

१ सत्य वचन योग
२ असत्य वचन योग
३ मिश्र वचन योग
४ व्यवहार वचन योग

सात काय के —

१ औदारिक काय योग
२ औदारिक-मिश्र काय योग
३ वैक्रिय काय योग

४ वैक्रिय-मिश्र काय योग

५ आहारक-काय योग

६ आहारक-मिश्र काय योग

७ कार्मण काय योग

व्याख्या

भारतीय साहित्य मे योग शब्द सुपरिचित एव बहु व्यापक है। सामान्य रूप में योग का अर्थ ध्यान तथा समाधि किया जाता है। 'योग-सूत्र' मे चित्त की वृत्तियो के निरोध को योग कहा गया है।

परन्तु जैन शास्त्रानुसार, प्रस्तुत मे योग शब्द का विशेष अर्थ लिया गया है। यहाँ पर मन, वचन और काय के व्यापार को योग कहा गया है। मन, वचन और काय वर्गणा के पुद्गलों की सहायता से, आत्म-प्रदेशो में होने वाले परिस्पन्द को Vibration कम्पन व हलन-चलन को योग कहा गया है।

मुख्य रूप मे योग के तीन भेद हैं। विस्तार की अपेक्षा से उसी के पन्द्रह भेद कर दिये गए हैं।

मन दो प्रकार का है—भाव मन और द्रव्य मन। भाव मन को Subjective mind और द्रव्यमन को Objective mind कहते हैं। द्रव्य मन का सम्बन्ध Brain से है। और भाव मन का सम्बन्ध आत्मा से।

मन की प्रवृत्ति चार ही प्रकार की हो सकती है—कभी सत्य, कभी असत्य, कभी सत्यासत्य (मिश्र) और कभी लोक व्यवहाररूप।

वचन का अर्थ है भाषा। वह भी चार ही प्रकार की हो सकती है—कभी सत्य, कभी असत्य, कभी सत्यासत्य (मिश्र) और कभी लोक-व्यवहाररूप।

काय का अर्थ है—शरीर। उस के पाच भेद हैं। शरीर का व्यापार सात प्रकार का ही हो सकता है। अधिक नही। अत: काय योग के सात भेद किए गए हैं।

कार्मण योग की तरह तैजस योग क्यो नही माना गया ? उसके स्वतन्त्र रूप मे मानने की आवश्यकता नही है। जो व्यापार कार्मण शरीर का है, वही तैजस शरीर का है। क्योंकि तैजस और कार्मण शरीर सदा सहचर रहते हैं। अत. कार्मण योग मे ही तैजस योग समाहित हो जाता है।

★

९

बोल नौवाँ : उपयोग बारह

पांच ज्ञान —

१ मति ज्ञान
२ श्रुत ज्ञान
३ अवधि ज्ञान
४ मनः पर्याय ज्ञान
५ केवल ज्ञान

तीन अज्ञान—

१ मति अज्ञान
२ श्रुत अज्ञान
३ अवधि अज्ञान (विभङ्ग ज्ञान)

चार दर्शन

१ चक्षुर् दर्शन
२ अचक्षुर् दर्शन
३ अवधि दर्शन
४ केवल दर्शन



व्याख्या

आत्मा के ज्ञान रूप व्यापार को उपयोग कहते हैं। किसी भी वस्तु को सामान्य या विशेष रूप से जान लेना उपयोग है। उपयोग के दो भेद हैं—ज्ञान और दर्शन। पदार्थों के विशेष बोध को ज्ञान या साकारोपयोग कहते हैं। पदार्थों के विशेष धर्म, विशेष गुण और विशेष क्रिया का ज्ञान होना—साकारोपयोग है। पदार्थों के सामान्य बोध को दर्शन या निराकारोपयोग कहते हैं।

जैन दर्शन में वस्तु सामान्य-विशेषात्मक मानी है। जब चेतना वस्तु के विशेष धर्म को मुख्य रूप मे और उस के सामान्य धर्म को गौण रूप मे ग्रहण करती है, तो चेतना के उस व्यापार को ज्ञानोपयोग कहा जाता है। परन्तु जब चेतना किसी भी वस्तु के सामान्य धर्म को मुख्य रूप में, और उसके विशेष धर्म को गौण रूप मे ग्रहण करती है, तब उसे दर्शनोपयोग कहते है, ज्ञान साकार और दर्शन निराकार होता है।

मति ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला रूपी पदार्थों का ज्ञान। मन से अरूपी पदार्थो का भी परोक्ष ज्ञान किया जा सकता है।

श्रुत ज्ञान—जो ज्ञान श्रुतानुसारी है। जिस से शब्द और और अर्थ का सम्बन्ध जाना जाता है। जो मति ज्ञान के बाद होता है।

मति और श्रुत का परस्पर सम्बन्ध है। दोनो में कार्य कारण भाव है। मति ज्ञान कारण है और श्रुत ज्ञान कार्य है। दोनो ज्ञान निमित्तावलम्बी होने से परोक्ष हैं।

अवधि ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना आत्मा-द्वारा मर्यादा पूर्वक रूपी द्रव्य का ज्ञान।

मनः पर्याय ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहाया के बिना आत्मा द्वारा सज्ञी जीवो के मनोगत भावो को जानने वाला ज्ञान।

केवल ज्ञान—मूर्त, अमूर्त, सूक्ष्म, स्थूल आदि त्रिकाल-वर्ती समस्त पदार्थ और उन की सम्पूर्ण पर्यायो को एक साथ जानने वाला ज्ञान, अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थ और उनकी सम्पूर्ण पर्यायो को बिना किसी बाह्य साधन के साक्षात् आत्मा द्वारा एक साथ जान लेने वाला ज्ञान।

अवधि आदि तीन ज्ञान प्रत्यक्ष है, अवधि और मन पर्याय विकल-अपूर्ण प्रत्यक्ष है, और केवल ज्ञान सकल-पूर्ण प्रत्यक्ष है।

मिथ्यात्व-सहचरित मति, श्रुत और अवधि क्रम से *मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, और अवधि अज्ञान* कहे जाते है। यहाँ पर अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नही, बल्कि कुत्सित ज्ञान समझना चाहिए। कुत्सित ज्ञान का अर्थ है, मिथ्या ज्ञान, विपरीत ज्ञान।

चक्षुर् दर्शन—चक्षुर्दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर चक्षु द्वारा पदार्थो का जो सामान्य रूप से बोध होता है।

अचक्षुर् दर्शन—अचक्षुर्दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर चक्षु को छोड कर शेष इन्द्रियो से और मन से पदार्थो का जो सामान्य रूप से बोध होता है।

अवधि दर्शन—अवधिदर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर, इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना रूपी पदार्थों का जो सामान्य बोध होता है।

केवल दर्शन—केवल दर्शनावरण कर्म के क्षय होने पर साक्षात् आत्मा द्वारा सकल पदार्थों का जो सामान्य बोध होता है, उसे केवल दर्शन कहते है।

☆

१०

बोल दशवाँ : कर्म आठ

१ ज्ञानावरण कर्म	५ आयुष् कर्म
२ दर्शनावरण कर्म	६ नाम कर्म
३ वेदनीय कर्म	७ गोत्र कर्म
४ मोहनीय कर्म	८ अन्तराय कर्म

व्याख्या

मिथ्यात्व, कषाय और योग आदि कारणो से जीव के द्वारा जो किया जाता है, वह कर्म है। जीव और कर्म का यह सम्बन्ध ठीक वैसा ही होता है, जैसा दूध और पानी का अथवा अग्नि और लोह पिण्ड का। आत्म-सम्बद्ध पुद्गल द्रव्य को कर्म कहते है।

यद्यपि जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि काल से है, परन्तु प्रत्येक का यह सम्बन्ध अनन्त काल तक रहेगा, सो बात नही

है। खान मे जो सुवर्ण है, उस का मिट्टी के साथ अनादि सम्बन्ध होने पर भी विशेष शोध-क्रिया के द्वारा जब उस से मिट्टी हटा देते है, तब वह शुद्ध सुवर्ण हो जाता है। यही सिद्धान्त कर्म और आत्मा पर भी लागू पड़ता है। कर्म-सहित जीव अशुद्ध और कर्म रहित जीव शुद्ध होता है। साधना के द्वारा जीव शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हो सकता है।

शास्त्र मे मुख्य रूप से कर्म के दो भेद हैं—भाव कर्म और द्रव्य कर्म। राग, द्वेष और कषाय आदि भाव कर्म हैं। भावकर्म के निमित्त से कर्म वर्गणा के पुद्गलो की एक विशेष परिणति द्रव्य कर्म है। ऊपर जो कर्म के आठ भेद हैं, वे द्रव्य कर्म हैं।

ज्ञानावरण कर्म—आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करने वाला कर्म। जिस प्रकार आंख पर कपडे की पट्टी लपेटने से वस्तुओ के देखने मे रुकावट पडती है, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म के प्रभाव से आत्मा को पदार्थों का विशेष बोध करने मे रुकावट पडती है।

जैसे सघन बादलो मे सूर्य के ढक जाने पर भी उसका प्रकाश उतना अवश्य रहता है, कि जिस से दिन-रात का भेद समझा जा सके। वैसे ही कैसा भी प्रगाढ ज्ञानावरण कर्म हो, उस के रहते हुए भी आत्मा मे इतना ज्ञान तो अवश्य रहता है, कि जिस से वह जड पदार्थो से पृथक् किया जा सके।

दर्शनावरण कर्म—आत्मा की सामान्य बोधरूप दर्शन शक्ति को, आत्मा के दर्शन गुण को ढकने वाला कर्म। यह कर्म द्वार-पाल के समान है। जैसे द्वार पाल राजा के दर्शन करने मे रुका-

वट डालता है, वैसे ही यह कर्म भी पदार्थो का सामान्य बोध करने मे रुकावट डालता है

वेदनीय कर्म—जो अनुकूल और प्रतिकूल विषयो से उत्पन्न सुख और दु ख रूप में वेदन अर्थात् अनुभव किया जाय। यह कर्म मधु-लिप्त तलवार की धार को चाटने के समान है। चाटते समय क्षण भर को सुख, परन्तु बाद में दु ख होता है। वेदनीय कर्म की भी यही स्थिति है। वेदनीय कर्म का दु ख तो दु खरूप है ही, किन्तु सुख भी अन्तत दु ख रूप ही है।

मोहनीय कर्म—जो कर्म आत्मा को मोहित करता है, भले-बुरे के विवेक से शून्य बना देता है, जो सदाचार विमुख करता है, वह कर्म मोहनीय है। यह कर्म अन्य कर्मों से प्रबल कर्म है। यह मदिरा के सदृश होता है। जैसे मदिरा पीने वाला विवेक-विकल हो जाता है, वैसे ही मोहनीय के प्रभाव से जीव विवेक-शून्य हो जाता है। यह कर्म आत्मा के श्रद्धान एव चारित्र गुण का घात करता है।

आयुष् कर्म—जिस कर्म के रहते प्राणी नर, नारकादि रूप से जीता है, और पूरा होने पर मर जाता है। यह कर्म कारागार के समान है।

नाम कर्म—जिस कर्म के उदय से जीव कभी नारक, कभी तिर्यञ्च, कभी मनुष्य और कभी देव कहलाता है। अथवा जो कर्म जीव को एकेन्द्रिय आदि नानाविध पर्यायो मे परिणत करता है। यह कर्म चित्रकार के समान माना गया है। जैसे चित्रकार नाना चित्र बनाता है, वैसे नाम कर्म भी जीव के नाना रूप बनाता है।

गोत्र कर्म—जिस कर्म के उदय से जीव जीवन की उच्च और नीच स्थिति को प्राप्त करता है, यह कर्म कुम्भकार के समान है। जैसे कुम्भकार अच्छे-बुरे घडो को बनाता है, वैसे ही यह कर्म भी जीव को उच्च और नीच बनाता रहता है।

अन्तराय कर्म—जिस कर्म के उदय से आत्मा की दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य शक्ति का घात होता है; अथवा इनमे रुकावट पडती है। यह कर्म भण्डारी के समान है। राजा देता है, भण्डारी बाधा डालता है। वैसे ही इस कर्म से दान, लाभ आदि में बाधा पडती है।

★

११

बोल ग्यारहवाँ गुण स्थान चौदह

१ मिथ्या-दृष्टि गुण स्थान

२ सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुण स्थान

३ सम्यग् मिथ्यादृष्टि (मिश्र) गुण स्थान

४ अविरत सम्यग्दृष्टि गुण स्थान

५ देश विरत गुण स्थान

६ प्रमत्त संयत गुण स्थान

७ अप्रमत्त संयत गुण स्थान



८ निवृत्ति वादर सम्पराय गुण स्थान

६ अनिवृत्ति बादर सम्पराय गुण स्थान

१० सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान

११ उपशान्त मोह-गुण स्थान

१२ क्षीण-मोह गुण स्थान

१३ सयोगी केवली गुण स्थान

१४ अयोगी केवली गुण स्थान।

व्याख्या

आत्मा की अशुद्धतम दशा से लेकर शुद्धतम दशा तक, ससार अवस्था से लेकर मुक्ति अवस्था तक और जीव की बद्ध स्थिति से लेकर मुक्त स्थिति तक—पहुँचने के लिए चौदह भूमिकाएँ stages मानी गई हैं, जिन्हें गुण स्थान अर्थात् विकास भूमिकाएँ कहते है। गुणस्थान का अर्थ है—आत्मा की स्थिति-विशेष। गुण (आत्मशक्ति) के स्थान (क्रमिक विकास) को गुणस्थान कहा जाता है।

मिथ्या दृष्टि गुण स्थान—मिथ्या (तत्त्व श्रद्धान के विपरीत) है, दृष्टि जिसकी, वह मिथ्या दृष्टि, उसका गुणस्थान मिथ्या दृष्टि गुणस्थान। यह जीव की निम्नतम दशा है।

सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान—सम्यक्त्व के आस्वाद मात्र से सहित जो दृष्टि वह सास्वादन। सम्यग्दृष्टि,उसका गुणस्थान सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से सम्यक्त्व से पराङ्मुख मिथ्यात्व की ओर झुके हुए जीव की स्थिति।

सम्यग् मिथ्या दृष्टि गुण स्थान—यह आत्मा की सदिग्ध, दोलायमान अवस्था है। इसमे विचार-दृष्टि स्थिर नही हो पाती है। इसमे स्थित जीव तत्त्वो पर न एकान्त रुचि करता है, न एकान्त अरुचि।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान—अविरत, त्याग-रहित। त्याग रहित है, सम्यग्दृष्टि जिसकी, वह अविरत सम्यग्दृष्टि, उसका गुणस्थान, अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान। यह त्याग-शून्य सम्यग् विचार की अवस्था है, इसमें दृष्टि तो सम्यग् है, पर आचरण नही।

देश *विरत गुण स्थान*—जिसको विरति (त्याग) पूर्ण न हो वह देश विरति, उसका गुणस्थान, देश विरत गुणस्थान। इसमे देश-रूप मे, अश-रूप मे, हिंसादि से विरति का भाव आ जाता है।

प्रमत्त सयत गुण स्थान—प्रमाद-युक्त साधु के गुणस्थान को प्रमत्त सयत गुणस्थान कहते है। इसमें सर्व रूप से, पूर्ण रूप मे चारित्र आ जाता है। सर्व विरत बन जाता है।

अप्रमत्त संयत गुण स्थान—प्रमाद-मुक्त साधु के गुणस्थान को अप्रमत्त सयत गुण स्थान कहते हैं। इसमे प्रमाद का अभाव होने से आत्मा और भी अधिक विशुद्ध होता है।

निवृत्ति बादर सम्पराय गुणस्थान—बादर का अर्थ स्थूल है, और सम्पराय का अर्थ कषाय है। दशम गुण स्थान सूक्ष्म सम्पराय की अपेक्षा उक्त गुणस्थान में स्थूल कषाय का अस्तित्व होने के कारण इसे बादर सम्पराय कहते हैं। निवृत्ति का अर्थ भिन्नता है।

अत प्रस्तुत गुण स्थान के सम समय-वर्ती समस्त जीवो के अध्यवसाय भिन्न अर्थात् न्यूनाधिक शुद्धि वाले होते हैं।

अनिवृत्ति बादर सम्पराय गुण स्थान—प्रस्तुत गुण स्थान मे भी बादर सम्पराय अर्थात् स्थूल कषाय का अस्तित्व रहता है। अत यह भी बादर-सम्पराय कहलाता है। पूर्ववर्ती अनिवृत्ति शब्द का अर्थ अभिन्नता है। अत. नवम गुणस्थान में जो जीव समसमय-वर्ती होते हैं, उन सबके अध्यवसाय एक समान अर्थात्, तुल्य शुद्धि वाले होते हैं।

सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान–सूक्ष्म रूप मे सम्पराय कषाय (मात्र लोभ) है जिसमे वह सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान। इसमे, चार कषायो में से केवल सूक्ष्म लोभ रह जाता है।

उपशान्त मोह गुण स्थान—उपशान्त अर्थात् अन्तर्मुहूर्त के लिए शान्त हो गया है, मोह कर्म जिसमे, वह उपशान्त मोह, उसका गुणस्थान, उपशान्तमोह गुणस्थान। इसमें मोह (लोभ) का उपशम होता है, क्षय नही।

क्षीण मोह गुण स्थान—क्षीण, अर्थात् समूल नष्ट हो गया है, मोह कर्म जिसका, वह क्षीण मोह, उसका गुण स्थान, क्षीण मोह गुण स्थान। इसमे मोह सर्वथा नष्ट हो जाता है।

सयोगी केवली गुण स्थान—योग का अर्थ मन, वचन और काय का व्यापार है। सयोगी अर्थात् योग युक्त है जो केवली, वह सयोगी केवली, उसका गुण स्थान, सयोगी केवली गुणस्थान, इसमे आत्मा सर्वज्ञ और सर्व-दर्शी हो जाता है।

अयोगी केवली गुण स्थान—अयोगी, योग रहित। योग-रहित है, केवली जिसमे, वह अयोगी केवली, उसका गुणस्थान, अयोगी केवली गुणस्थान। इसमे आत्मा शैलेश अर्थात् मेरु पर्वत के समान निष्कम्प हो जाता है। इसके बाद आत्मा गुणस्थानातीत होकर सर्वथा शुद्ध, मुक्त, परमात्मा बन जाता है।

★

१२

बोल बारहवाँ : पाँच इन्द्रियों के तेईस विषय

श्रोत्र इन्द्रिय के तीन विषय—

१ जीव शब्द
२ अजीव शब्द
३ मिश्र शब्द

चक्षुष्-इन्द्रिय के पाँच विषय—

१ कृष्ण वर्ण
२ नीलवर्ण
३ रक्त वर्ण
४ पीतवर्ण
५ श्वेतवर्ण

घ्राण इन्द्रिय के दो विषय—

१ सुगन्ध
२ दुर्गन्ध

रसन इन्द्रिय के पांच विषय—

१ अम्ल (खट्टा) रस
२ मधुर (मीठा) रस
३ कटु (कडवा) रस
४ कषाय (कसैला) रस
५ तिक्त (तीखा) रस

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषय—

१ शीत स्पर्श
२ उष्ण स्पर्श
३ रूक्ष स्पर्श
४ स्निग्ध स्पर्श
५ लघु स्पर्श
६ गुरु स्पर्श
७ मृदु स्पर्श
८ कर्कश स्पर्श

व्याख्या

इन्द्रिय पाँच है, अत मुख्यतया उनके विषय भी पाँच हैं—शब्द, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श। विस्तार की अपेक्षा से इनके तेईस विषय हो जाते हैं। पाँच इन्द्रिय के विषय तेईस और विकार दो सौ चालीस होते हैं।

ससार के समस्त पदार्थ दो विभागो मे विभक्त हैं—मूर्त और अमूर्त। जिसमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हो, वह मूर्त, शेष सभी अमूर्त। मूर्त अर्थात् पौद्गलिक पदार्थ ही इन्द्रिय-ग्राह्य हो सकते हैं, अमूर्त नही,—जैसे आत्मा आदि।

प्रत्येक इन्द्रिय अपने विषय को ही ग्रहण करती है। दूसरे के विषय को नही। रूप को चक्षुष् ही ग्रहण करती है। घ्राण एव रसन आदि नही। सर्वत्र यही क्रम है।

विकार

पाँच इन्द्रियों के दो सौ चालीस विकार होते हैं और वे इस प्रकार समझने चाहिएँ—

श्रोत्र इन्द्रिय के तीन विषयो के १२ विकार—जीव शब्द, अजीव शब्द और मिश्र शब्द। तीन शुभ और तीन अशुभ। इन छह पर राग और छह पर द्वेष। ये १२ विकार हुए।

चक्षुष् इन्द्रिय के पाँच विषयो के ६० विकार—५ सचित्त, ५ अचित्त और ५ मिश्र। ये १५ शुभ और १५ अशुभ। इन ३० पर राग और ३० पर द्वेष। ये ६० विकार हुए।

घ्राण इन्द्रिय के दो विषयो के १२ विकार—२ सचित्त, २ अचित्त और २ मिश्र। इन छह पर राग और छह पर द्वेष। ये १२ विकार हुए।

रसन इन्द्रिय के पांच विपयो के ६० विकार—५ सचित्त, ५ अचित्त और ५ मिश्र। १५ शुभ और १५ अशुभ। ३० पर राग और ३० पर द्वेष। ये ६० विकार हुए।

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विपयो के ९६ विकार—८ सचित्त, ८ अचित्त और ८ मिश्र। २४ शुभ और २४ अशुभ, इस प्रकार ४८ पर राग और ४८ पर द्वेष। ये ९६ विकार हुए।

☆

१३
बोल तेरहवाँ : दश प्रकार का मिथ्यात्व

१ जीव को अजीव समझना मिथ्यात्व
२ अजीव को जीव समझना मिथ्यात्व
३ धर्म को अधर्म समझना मिथ्यात्व
४ अधर्म को धर्म समझना मिथ्यात्व
५ साधु को असाधु समझना मिथ्यात्व
६ असाधु को साधु समझना मिथ्यात्व
७ ससार-मार्ग को मोक्ष-मार्ग समझना मिथ्यात्व
८ मोक्ष-मार्ग को ससार-मार्ग समझना मिथ्यात्व

९ मुक्त को अमुक्त समझना मिथ्यात्व
१० अमुक्त को मुक्त समझना मिथ्यात्व

व्याख्या

जीव के विपरीत श्रद्धानरूप परिणाम को मिथ्यात्व कहा गया है। मिथ्यात्व ससार का वीज है, कारण है। जब तक आत्मा मे मिथ्यात्व का शल्य है, तव तक वह शुद्ध, निर्मल और मलमुक्त नही वन सकता।

अतत्त्व मे तत्त्व बुद्धि रखना, अधर्म मे धर्म बुद्धि रखना, अदेव मे देवबुद्धि रखना और अगुरु मे गुरु बुद्धि रखना, मिथ्यात्व है।

तत्व—यहां पर तत्व का अर्थ जीव, अजीव आदि तत्व समझना चाहिए।

देव—कर्म रूप शत्रु के विजेता, अष्टादश दोप-शून्य, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग अरिहन्त भगवान् देव है।

गुरु—कनक और कान्ता के त्यागी, पञ्च महाव्रत के पालने वाले, पञ्च समिति और तीन गुप्ति के धारक सन्त गुरु है।

धर्म—सर्वज्ञ भाषित, दयामय, विनय-मूलक, कर्म का नाश करने वाला और मोक्ष की ओर ले जाने वाला तत्व धर्म है।

यह वर्णन व्यवहार दृष्टि से किया गया है। निश्चय दृष्टि से तो आत्मा स्वयं ही देव है, स्वयं ही गुरु है, और स्वयं ही धर्म है।

प्रस्तुत बोल मे दश प्रकार के मिथ्यात्व का वर्णन किया गया

है। जीव को जीव और अजीव को अजीव समझना सम्यक्त्व है। परन्तु जीव को अजीव समझना मिथ्यात्व है। इसी प्रकार अजीव को जीव समझना भी मिथ्यात्व है। यथार्थ-दृष्टि सम्यक्त्व है, और विपरीत-दृष्टि मिथ्यात्व है। सम्यक्त्व मोक्ष-हेतु है, और मिथ्यात्व ससार-हेतु।

इसी प्रकार धर्म और अधर्म, साधु और असाधु, ससार और मोक्ष तथा मुक्त और अमुक्त के विषय मे भी समझ ले। यदि इनमे यथार्थ दृष्टि है, तो वह सम्यक्त्व है, और यदि इनमें विपरीत दृष्टि है, तो वह मिथ्यात्व है।



१४

बोल चौदहवाँ : नव तत्त्व के ११५ भेद

नव तत्त्व

१	जीव तत्त्व	५	आस्रव तत्त्व
२	अजीव तत्त्व	६	सवर तत्त्व
३	पुण्य तत्त्व	७	निर्जरा तत्त्व
४	पाप तत्त्व	८	बन्ध तत्त्व

९ मोक्ष तत्त्व

व्याख्या

यथार्थ सद् वस्तु को तत्त्व कहते हैं। ये नव मूल तत्त्व है। जीव चेतनामय है। अजीव अचेतनामय है। पुण्य सुख देने वाला है। पाप दु ख देने वाला है। आस्रव, शुभ और अशुभ कर्मो के

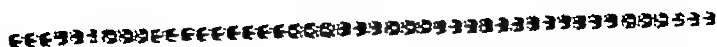
आने का द्वार है। सवर, आस्रव का निरोध है। एक देश मे कर्मो का आत्मा से अलग होना निर्जरा है। बन्ध, आत्मा और कर्म पुद्गल का परस्पर सम्बन्ध है। मोक्ष, सम्पूर्ण कर्मो का क्षय है।

जीव तत्त्व के चौदह भेद

१ सूक्ष्म एकेन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
२ बादर एकेन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
३ द्वीन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
४ त्रीन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
५ चतुरिन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
६ असज्ञी पचेन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
७ सज्ञी पञ्चेन्द्रिय के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त

व्याख्या

एकेन्द्रिय जीवों के दो भेद हैं—सूक्ष्म और बादर। व्यवहार दृष्टि मे सूक्ष्म का अर्थ है—आंखो से न दीखने वाले जीव, और बादर का अर्थ है—स्थूल जीव। परन्तु शास्त्र की दृष्टि मे जिन्हे सूक्ष्म नाम कर्म का उदय हो, वे सूक्ष्म और जिन्हे बादर नाम कर्म का उदय हो, वे बादर। बादर जीव के शरीर भी अलग-अलग नही देखे जाते। किन्तु वे समुदाय रूप मे ही देखे जाते है। सूक्ष्म जीव सपूर्ण लोक व्यापी है। बादर लोक के एक देश मे है।



अजीव तत्त्व के चौदह भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद—

१ स्कन्ध
२ देश
३ प्रदेश

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद—

१ स्कन्ध
२ देश
३ प्रदेश

आकाशास्तिकाय के तीन भेद—

१ स्कन्ध
२ देश
३ प्रदेश
१ दशवाँ काल

पुद्गलास्तिकाय के चार भेद—

१ स्कन्ध
२ देश

३ प्रदेश

४ परमाणु

व्याख्या

स्कन्ध—स्कन्ध के दो अर्थ हैं—एक तो अखण्ड वस्तु को स्कन्ध कहते हैं, दूसरा अलग-अलग अवयव एकत्रित होकर जो एक अवयवी अर्थात् एक समूह बन जाता है, उस समुदित अवस्था का नाम भी स्कन्ध है।

देश—स्कन्ध का एक कल्पित भाग

प्रदेश—निरंश अंश, अर्थात् जिस अंश का दूसरा अंश नहीं हो सकता। यह स्कन्ध का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाग है।

परमाणु—प्रदेश और परमाणु एक ही है, परन्तु अन्तर इतना ही है कि जब तक वह स्कन्ध से संलग्न रहता है, तब तक प्रदेश और जब स्कन्ध से अलग हो जाता है, तब उसे परमाणु कहते है। "स्कन्धसंयुक्त प्रदेश., स्कन्ध-विविक्त परमाणु।"

पुद्गलास्तिकाय में स्कन्ध, देश, प्रदेश का व्यवहार स्पष्टत. परिलक्षित हो जाता है। किन्तु धर्मास्तिकाय आदि अमूर्त पदार्थों में यह सब व्यवहार बुद्धि-परिकल्पित होता है। क्योंकि वे मूलत अखण्ड पदार्थ है। अखण्ड पदार्थ अनादि अनन्त होता है, वह किन्हीं अवयवों से मिल कर नहीं बनता। अत: उनके देश और प्रदेश आदि मात्र बुद्धि-परिकल्पित ही होते हैं, वास्तविक

नही। इसी लिए धर्मास्तिकाय आदि का चौथा भेद परमाणु नही माना गया है। परमाणु वही प्रदेश होता है, जो स्कन्ध से अलग होता है। और धर्मास्तिकाय आदि के बुद्धि-परिकल्पित प्रदेश तीन काल मे कभी भी पृथक् नही होते।

काल के भेद-प्रभेद न बताकर मात्र 'दशवा काल' इतना ही कहा गया है। इसका कारण यह है, कि काल स्कन्ध नही है। अत उसके देश और प्रदेश आदि किसी प्रकार के भी भेद प्रभेद नही होते। तत्त्वार्थ सूत्र के पाँचवें अध्याय मे काल को समय-रूप कहा है, और वे समय अनन्त हैं।

पुण्य तत्त्व के नव भेद

१ अन्न पुण्य

२ पान पुण्य

३ स्थान पुण्य

४ शय्या पुण्य

५ वस्त्र पुण्य

६ मन पुण्य

७ वचन पुण्य

८ काय पुण्य

९ नमस्कार पुण्य

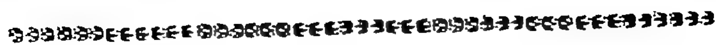
व्याख्या

पुण्य सुख-रूप होता है। पुण्य क्या है? शुभ योग से बंधने वाला शुभ कर्म। पुण्य से आरोग्य, सम्पत्ति, रूप, कीर्ति, दीर्घ आयुष्य और सुपरिवार आदि सुख के साधन, जीव को उपलब्ध होते है।

यहाँ पुण्य के जो नव भेद किए गए हैं, वे वास्तव मे पुण्य के भेद नही, किन्तु पुण्य के कारण है, जो नव विभाग में विभक्त किए गए हैं।

जीव इन नव कारणो से पुण्य का बन्ध कर सकता है। किसी दुःखित को अथवा सदाचारी व्यक्ति को स्थान, शय्या और वस्त्र देने से, शरीर से किसी की सेवा करने से, मधुर एवं हितकर वाणी बोलने से, शुभ विचारो का चिन्तन करने से और किसी पूज्य पुरुष को वन्दन करने से।

पुण्य मनुष्यगति, देवगति, पचेन्द्रिय जाति, शुभ वर्ण, शुभ गन्ध, शुभ रस, शुभ स्पर्श, सौभाग्य, सुस्वर, आदेय, यश आदि ४२ प्रकार से भोगा जाता है। पुण्य को बाँधते समय दुःख और भोगते समय सुख मिलता है। आत्म-विकास मे पुण्य कथंचित् निमित्त है, अतः उपादेय है, परन्तु साधना की उच्च अवस्था मे पुण्य भी हेय है।



पाप तत्त्व के अठारह भेद

१	प्राणातिपात	(हिंसा)
२	मृषावाद	(झूठ)
३	अदत्तादान	(चोरी)
४	मैथुन	(व्यभिचार)
५	परिग्रह	(ममताभाव)
६	क्रोध	
७	मान	
८	माया	
९	लोभ	
१०	राग	(मनोज्ञ वस्तु पर स्नेह)
११	द्वेष	(अमनोज्ञ वस्तु पर द्वेष)
१२	कलह	(क्लेश, झगडा)
१३	अभ्याख्यान	(झूठा कलक लगाना)
१४	पैशुन्य	(दूसरे की चुगली करना)
१५	पर-परिवाद	(अवर्णवाद, निन्दा)
१६	रति-अरति	(शब्दादि मनोज्ञ पर प्रीति, अमनोज्ञ पर अप्रीति)

१७ माया मृषा (कपट-सहित मिथ्या भाषण)
१८ मिथ्यादर्शन शल्य (कुदेव, कुगुरु, और कुधर्म पर श्रद्धा)

व्याख्या

अशुभ योग से बँधने वाले अशुभ कर्म को पाप कहते है। क्योंकि वह आत्मा को मलिन बनाता है। पाप के उदय से जीव को दुख और पीडा मिलती है। पाप बांधते समय सुखकर किन्तु भोगते समय दुखकर प्रतीत होता है।

अठारह प्रकार से पाप बाधा जाता है, और ज्ञानावरण, दर्शनावरण, असातावेदनीय, मोहनीय, नरक गति, तिर्यचगति, अशुभ वर्ण आदि ८२ प्रकार से भोगा जाता है। पापस्थानो के सेवन से जीव भारी हो जाता है, और नीच गति मे जाता है। इनके त्याग से जीव हल्का हो जाता है, और उच्च गति प्राप्त करता है। पाप हेय ही होता है, कभी उपादेय नही होता।

पाप तत्त्व के ये अठारह भेद पाप बन्ध के कारण हैं। कारण मे कार्य का उपचार मानकर ही पापतत्व के भेद बनाए गए हैं।

आस्रव तत्त्व के बीस भेद

पांच अव्रत—

१ प्राणातिपात
२ मृषावाद

३ अदत्तादान
४ मैथुन
५ परिग्रह

पाँच इन्द्रिय—

१ श्रोत्रेन्द्रिय प्रवृत्ति
२ चक्षुरिन्द्रिय प्रवृत्ति
३ घ्राणेन्द्रिय प्रवृत्ति
४ रसनेन्द्रिय प्रवृत्ति
५ स्पर्शनेन्द्रिय प्रवृत्ति

पाँच आस्रव—

१ मिथ्यात्व आस्रव
२ अविरति आस्रव
३ प्रमाद आस्रव
४ कषाय आस्रव
५ अशुभ योग आस्रव

तीन योग—

१ मन प्रवृत्ति
२ वचन प्रवृत्ति
३ काय प्रवृत्ति

दो अयतना—

१ भाण्डोपकरण अयतना से लेना, रखना
२ सूचि कुशाग्र मात्र, अयतना से लेना, रखना।

व्याख्या

जिन कारणो के द्वारा आत्मा मे कर्म मल आता है, वे कारण आस्रव कहलाते हैं। जीव रूप तालाव मे, कर्म-रज रूप जल, हिंसा, असत्य आदि आस्रव द्वार रूप नाली से आता रहता है। आस्रव से आत्मा मलिन बनता है क्योंकि आस्रव से कर्मो का निरन्तर सञ्चय होता रहता है।

हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, व्यभिचार करना और परिग्रह का संचय करना—ये पांच अव्रत रूप आस्रव हैं।

पांच इन्द्रियों को यदि वश मे नही रखा जाता, उनका निग्रह नही किया जाता, उन पर संयम का अंकुश नही रखा जाता, यदि वे खुली छोड दी जाती है, तो वे कर्मबन्ध मे निमित्त होने से आस्रवरूप है।

विपरीत श्रद्धान, अविरति, (असंयम), प्रमाद, कषाय और अशुभ योग—ये पाचो आस्रव रूप है।

मन, वचन और काय की अशुभ प्रवृत्ति भी आस्रव रूप है। कर्म बन्धन का कारण है।

रजोहरण, पात्र आदि भाण्डोपकरण और कुश=तृण,

सूचि=सूई पाट आदि अन्य कोई भी वस्तु यदि अविवेक से ली जाती है और अविवेक से रखी जाती है, तो यह भी आस्रव है।

इन बीस कारणो से आत्मा कर्मों का सचय करता है, अत ये आस्रव हैं। आस्रव ससार का कारण है। इससे ससार की वृद्धि होती है।

सवर के बीस भेद

पाच व्रत—

१ प्राणातिपात विरमण
२ मृपावाद विरमण
३ अदत्तादान विरमण
४ अब्रह्मचर्य विरमण
५ परिग्रह विरमण

पाँच इन्द्रिय—

१ श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह
२ चक्षुरिन्द्रिय निग्रह
३ घ्राणेन्द्रिय निग्रह
४ रसनेन्द्रिय निग्रह
५ स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह



पाँच संवर—

१ सम्यक्त्व संवर
२ व्रत संवर
३ अप्रमाद संवर
४ अकषाय संवर
५ शुभयोग संवर

तीन योग—

१ मनो निग्रह
२ वचन निग्रह
३ काय निग्रह

दो यतना—

१ भाण्डोपकरण, यतना से लेना, रखना।
२ सूचि कुशाग्र मात्र, यतना से लेना, रखना।

व्याख्या

आस्रव का निरोध संवर है। संवर आस्रव का विरोधी तत्त्व है। संवर का अर्थ है, संवरण अर्थात् संयम। जिन कारणों से आस्रव को रोका जाता है, वे संवर कहे जाते हैं।

जीव रूप तालाब में, कर्म-रज रूप जल को आने से संवर रूप डाट के द्वारा रोकना, उसे संवर कहते हैं। संवर में आत्मा



शुद्ध एव निर्मल वनता है। क्योकि सवर की साधना से कर्म मल आत्मा मे नही आ पाता।

हिंसा से विरति, असत्य से विरति, चोरी से विरति, अब्रह्मचर्य से विरति और परिग्रह से विरति—ये पाँच व्रत रूप सवर हैं। सवर धर्म का कारण है।

पाँच इन्द्रियो का निग्रह करना, उनकी अशुभ प्रवृत्ति को रोकना—यह पाँच इन्द्रियो का निरोधरूप सवर है। निगृहीत इन्द्रिय सवररूप हैं।

यथार्थ श्रद्धान, विरति (व्रत), अप्रमाद, अकषाय और शुभ योग– ये पाँच सवर हैं। क्योकि इनसे आत्मा की शुद्धि होती है।

मनोनिरोध, वचन-निरोध और काय-सयम—ये तीनो भी संवर रूप हैं। इन तीनो योगो का शुभत्व सवर है।

यदि तत्त्व-दृष्टि से देखा जाए, तो योग मात्र आस्रव है। भले ही वह शुभ हो, या अशुभ। शुभ योग पुण्यास्रव है और अशुभ योग पापास्रव। यहाँ शुभ योग को जो सवर कहा है, वह अशुभ से निवृत्ति-रूप है। अत. शुभ की शुद्धाश मे लक्षणा है।

रजोहरण, पात्र आदि भण्डोपकरण तथा सूई आदि अन्य किसी भी वस्तु को यतना से लेना और यतना से रखना—यह भी सवर है।

इन वीस कारणो से आत्मा आस्रव को रोकता है। अत ये सवर है। सवर मोक्ष का कारण है। इसकी शुद्ध साधना से ससार के वन्धन कट जाते हैं।

निर्जरा तत्त्व के बारह भेद

१ अनशन तप (उपवास आदि)
२ ऊनोदरी तप (भूख से कम खाना)
३ भिक्षाचरी तप (निर्दोष भिक्षा ग्रहण करना)
४ रसपरित्याग तप (सुस्वादु भोजन का त्याग)
५ कायक्लेश तप (वीरासन आदि करना)
६ प्रतिसलीनता तप (एकान्त शय्यासन)
७ प्रायश्चित तप (दोषो की आलोचनादि के द्वारा शुद्धि)
८ विनय तप (गुरु आदि की भक्ति)
९ वैयावृत्य तप (आचार्य आदि की सेवा)
१० स्वाध्याय तप (शास्त्र वाचनादि)
११ ध्यान तप (मन की एकाग्रता)
१२ व्युत्सर्ग तप (शरीर के व्यापार आदि का त्याग)

व्याख्या

कर्म-वर्गणा का आत्मा से एक देश से दूर हो जाना, निर्जरा है। जीव रूप वस्त्र को कर्म रूप मल लगा हुआ है। ज्ञान रूप जल और तप रूप साबुन से उसको शुद्ध किया जाता है। यह निर्जरा तत्त्व को समझने के लिए एक रूपक है।

निर्जरा दो प्रकार की है—सकाम और अकाम। सवर-पूर्वक निर्जरा सकाम है, और विना विवेक के, विना सयम के जो कष्ट सहन किया जाता है, वह अकाम निर्जरा है।

बद्ध कर्मो का क्षय तप से होता है। अत निर्जरा की व्याख्या करते हुए प्रस्तुत बोल मे अनशन आदि छह प्रकार का वाह्य तप और प्रायश्चित्त आदि छह प्रकार का आभ्यन्तर तप बताया गया है। यह तप कर्म-निर्जरा का हेतु है, कारण है। कारण मे कार्य का उपचार करने से यहाँ पर तप को निर्जरा कहा गया है।

कर्म परमाणुओ का आत्मा से एक देश से दूर हो जाना निर्जरा है, और सर्वथा कर्मो का क्षय हो जाना मोक्ष है। देश मुक्ति निर्जरा और सर्व-मुक्ति मोक्ष है।

बन्ध तत्त्व के चार भेद

१ प्रकृति बन्ध
२ स्थिति बन्ध
३ अनुभाग बन्ध
४ प्रदेश बन्ध

व्याख्या

कर्म-वर्गणा और आत्मा का अन्योऽन्यानुप्रवेश रूप जो परस्पर सम्वन्ध है, वह वन्ध कहाता है। कषाय और योग से जीव कर्म-पुद्गलो को ग्रहण करता है। नीर और क्षीर की तरह अथवा अग्नि और लोह पिण्ड की तरह कर्म-पुद्गल और आत्म-

प्रदेशो का जो एकीभाव है, उसे वन्ध कहते है। जैसे कोई व्यक्ति शरीर पर तेल लगाकर धूल मे लेटता है, तो धूल उसके शरीर के चिपक जाती है। इसी प्रकार कषाय और योग से आत्म-प्रदेश मे जव कम्पन होता है, तव आत्मा के साथ कर्म का वन्ध होता है। वन्ध तत्व के चार भेद हैं—

प्रकृति वन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गल में ज्ञानावरणादि रूप भिन्न-भिन्न स्वभाव का अर्थात् शक्ति का पैदा होना।

स्थिति वन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गल में अमुक काल तक अपने स्वभाव का परित्याग न करते हुए जीव के साथ लगे रहने की काल मर्यादा।

अनुभाग वन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म-पुद्गल मे तीव्र एव मन्द फल देने की शक्ति। इसको अनुभाव वन्ध और रस वन्ध भी कहते है।

प्रदेश वन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म - पुद्गल के परमाणुओ का कम या अधिक होना अर्थात् जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणु वाले कर्म-स्कन्ध का सम्बन्ध होना।

इन चार वन्धो मे से प्रकृति वन्ध और प्रदेश वन्ध योग से होता है, और स्थिति-वन्ध तथा अनुभाग वन्ध कषाय से होता है।

कर्म वन्ध के पाच हेतु हैं— मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। परन्तु मुख्य दो है—कषाय और योग।

मोक्ष तत्त्व के चार भेद

१	सम्यग् ज्ञान	३	सम्यक् चारित्र
२	सम्यग् दर्शन	४	सम्यक् तप

व्याख्या

नव तत्त्वो मे यह अन्तिम तत्व है। संवर और निर्जरा की साधना से आत्मा मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

बन्ध और बन्ध के कारणो का जब अभाव हो जाता है, और जब आत्म-विकास पूर्ण हो जाता है, तब आत्मा की उस सर्वथा और सर्वदा शुद्ध स्थिति को मोक्ष कहा जाता है। आत्म-गुणो का पूर्ण विकास ही वस्तुत मोक्ष है।

मोक्ष, मुक्ति और निर्वाण—एकार्थक शब्द हैं। कर्म-बद्ध आत्मा का कर्म-मुक्त हो जाना—यह मोक्ष है। मोक्ष आत्मा की एक पूर्ण अखण्ड शुद्ध अवस्था है। जहाँ पूर्णता होती है, वहाँ विभिन्न प्रकार के भेद एव प्रकार नही होते। इसीलिए प्रस्तुत मे मोक्ष तत्व के भेद बताते हुए उसकी प्राप्ति के चार साधन बताए गए हैं।

इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के उपर्युक्त चार साधन शास्त्र मे कहे गए हैं—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र और विवेक पूर्वक तप। जीव इन साधनो से मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

जीव का स्वभाव ऊर्ध्व गमन है। वह जो अधोगमन और तिर्यग् गमन करता है, उसमें जीव के कर्म कारण हैं। जैसे लेप-सहित तुम्बा जल मे नीचे बैठ जाता है, परन्तु उस पर से मिट्टी

का लेप हट जाने से वही तुम्बा-ऊपर अर्थात् जल की सतह पर आ जाता है। यही स्थिति आत्मा की भी है। कर्म सहित आत्मा नीचे अधोगति में जाता है, और कर्म-रहित होने पर वही आत्मा अपनी सहज स्वभाव गति से मोक्ष पा लेता है।

एक बार जब आत्मा मुक्त हो जाता है, तो फिर वह कभी संसार मे नहीं आता। क्योकि मुक्त आत्मा में ससार का कारण ही नही रहता। जैसे दग्ध बीज को कितना भी पानी दिया जाए, कितनी भी उर्वर भूमि मे बोया जाए, पर वह कभी अकुरित नही हो सकता, वैसे ही जिस आत्मा मे से बन्ध और बन्ध के कारणों का अभाव हो गया है, जो मुक्त हो गया है, वह फिर कभी संसार में नही आता।

जिन जीवो में मोक्ष पाने की योग्यता है, वे ही मोक्ष प्राप्त करते है, उनको भव्य कहते हैं। जिन जीवो में मोक्ष पाने की योग्यता नही, वे अभव्य है।

नव तत्त्वो में मुख्य तत्त्व दो हैं—जीव और अजीव। शेष सभी तत्त्व जीव और अजीव की पर्याय-विशेष ही हैं। उनका अपना पदार्थ रूप मे स्वतन्त्र कोई अस्तित्व नही।

जिसमें चेतना है, वह जीव है; और जिसमें चेतना नही, वह अजीव है। ये दोनो स्वतन्त्र तत्त्व हैं।

पुण्य और पाप का समावेश अजीव तत्त्व मे हो जाता है। क्योंकि पुण्य और पाप पुद्गल रूप है। पुण्य शुभ पुद्गल और पाप अशुभ पुद्गल है।

अथवा इन दोनो का अन्तर्भाव आस्रव और बन्ध मे भी किया जा सकता है। शुभ आस्रव और अशुभ आस्रव, तथा शुभ बन्ध और अशुभ बन्ध। इनमे शुभ पुण्य है और अशुभ पाप है।

आस्रव और बन्ध तत्त्व तो स्पष्ट ही पुद्गल हैं, पुद्गल की पर्याय विशेष ही हैं। अत इनका समावेश अजीव तत्त्व मे हो जाता है। इस प्रकार पुण्य और पाप, आस्रव और बन्ध—ये चार तत्त्व अजीव तत्त्व मे आ जाते है।

सवर निर्जरा और मोक्ष—ये तीनो जीव की ही पर्याय-विशेष हैं। सवर जीव की आस्रव-निरोध रूप शुद्धि है। निर्जरा भी अशत कर्म-क्षय रूप एक प्रकार की शुद्धि ही है, और मोक्ष तो जीव की पूर्ण शुद्धि का ही नाम है। अत. संवर, निर्जरा और मोक्ष का समावेश जीव तत्त्व मे हो जाता है।

अतः सक्षेप मे दो ही तत्त्व हैं—जीव और अजीव। शेष इन दोनों का ही विस्तार है।

इन नव तत्त्वो को ज्ञेय, उपादेय और हेय इन तीन भागो में भी विभक्त किया जा सकता है।

जीव और अजीव ज्ञेय है। पाप, आस्रव और वन्ध हेय हैं। पुण्य कथचित् हेय और कथचित् उपादेय है। संवर, निर्जरा तथा मोक्ष उपादेय हैं। ज्ञेय वह है, जो जानने के योग्य है। उपादेय वह है, जो ग्रहण करने के योग्य है। हेय वह है, जो छोड़ने के योग्य है।

★

१५

बोल पन्द्रहवाँ : आत्मा आठ

१ द्रव्य आत्मा	५ ज्ञान आत्मा
२ कषाय आत्मा	६ दर्शन आत्मा
३ योग आत्मा	७ चारित्र आत्मा
४ उपयोग आत्मा	८ वीर्य आत्मा

व्याख्या

आत्मा एक शाश्वत तत्त्व है। वह अतीत में भी था, वर्तमान मे भी है, और भविष्य मे भी रहेगा। उसकी न उत्पत्ति है, और न उसका विनाश। फिर भी ऐसा नही कहा जा सकता, कि उसमे किसी प्रकार का परिवर्तन होता ही नही। द्रव्य से नित्य होकर भी आत्मा पर्याय से अनित्य है, परिवर्तनशील है। जीव के परिणामो का कोई अन्त नही है। प्रस्तुत बोल मे मुख्यत. आत्माओ की आठ स्थिति का वर्णन है।

द्रव्य आत्मा—आत्मा असख्यात प्रदेशो का समुदाय है। आत्मा अखण्ड है, वह कोई असख्य प्रदेशो से सयुक्त रूप मे निर्मित नही हुआ है। प्रदेश कल्पनामात्र बुद्धि-परिकल्पित है। ये प्रदेश आत्मा से पृथक्तया विभाजित नही किए जा सकते।

कषाय आत्मा—कषाय चार है—क्रोध, मान, माया और लोभ। कषाय युक्त आत्मा को कषाय आत्मा कहा है। उपशान्त और

क्षीण कषाय आत्माओ को छोडकर शेष समस्त ससारी जीवो मे यह आत्मा होती है।

योग आत्मा—योग मन, वचन एव काय का व्यापार है। योग-युक्त आत्मा को योग आत्मा कहते हैं। अयोगी केवली और सिद्धो मे यह आत्मा नही होती। शेष सभी जीव योग वाले है।

उपयोग आत्मा—उपयोग अर्थात् ज्ञान और दर्शन। उपयोग-युक्त आत्मा को उपयोग आत्मा कहते हैं। उपयोग आत्मा सिद्ध और ससारी सभी जीवो मे होती है। क्योकि उपयोग आत्मा का लक्षण है। अत उपयोग-शून्य कोई आत्मा नही हो सकती।

ज्ञान आत्मा—ज्ञान आत्मा का निज गुण है। ज्ञान-युक्त आत्मा को ज्ञान आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सभी जीवो में है। परन्तु जब ज्ञान का अर्थ सम्यग्ज्ञान करें, तब यह आत्मा केवल सम्यग्दृष्टि जीवो में रहेगी। क्योकि मिथ्या दृष्टि मे ज्ञान नही, अज्ञान होता है।

दर्शन आत्मा—दर्शन अर्थात् सामान्य बोध। दर्शन-युक्त आत्मा को दर्शन आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सभी जीवो मे होता है। अथवा सम्यग्दर्शन रूप आत्मा सम्यग् दृष्टि जीवो मे ही होती है।

चारित्र आत्मा—चारित्र अर्थात् अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति। चारित्र युक्त आत्मा को चारित्र आत्मा कहते हैं। यह आत्मा विरति-सम्पन्न जीवो मे होता है।

वीर्य आत्मा—वीर्य अर्थात् जीव की शक्ति-विशेष। वीर्य-युक्त आत्मा को वीर्य आत्मा कहते है। यह आत्मा सभी जीवो मे होती है। अन्तर केवल इतना ही है, कि संसारी आत्माओ का वीर्य, सकरण अर्थात् क्रियारूप वीर्य है, और सिद्ध आत्माओ का वीर्य, लब्धि अर्थात् शक्ति रूप वीर्य है।

★

१६

बोल सोलहवाँ : दण्डक चौवीस

सात नरक का एक दण्डक—

१	रत्नप्रभा	५	धूमप्रभा
२	शर्करा प्रभा	६	तम प्रभा
३	वालुका प्रभा	७	महातम प्रभा
४	पङ्क प्रभा		

दश भवन-पति के दश दण्डक—

१	असुरकुमार	६	द्वीपकुमार
२	नागकुमार	७	उदधिकुमार
३	सुपर्णकुमार	८	दिशाकुमार
४	विद्युत्कुमार	०	पवनकुमार
५	अग्निकुमार	१०	स्तनितकुमार

पाच स्थावर के पांच दण्डक—

१ पृथ्वी काय
२ अप् काय
३ तेजस् काय
४ वायुकाय
५ वनस्पति काय

तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक—

१ द्वीन्द्रिय
२ त्रीन्द्रिय
३ चतुरिन्द्रिय

अन्तिम पांच दण्डक—

१ तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का एक दण्डक
१ मनुष्य का एक दण्डक
१ व्यन्तर देव का एक दण्डक
१ ज्योतिष देव का एक दण्डक
१ वैमानिक देव का एक दण्डक

व्याख्या

जीव अपनी शुभ और अशुभ प्रवृत्ति के कारण शुभाशुभ कर्मों का सचय करता रहता है। फिर उन शुभ एव अशुभ कर्मों का फल भोगने के लिए चार गतियो मे परिभ्रमण करता है। अत जहाँ जीव स्वकृत कर्मो का फल भोगता है, उसे दण्ड कहते हैं। अर्थात् कर्म फल या दण्ड भोगने के स्थान को इस बोल मे २४ भागो मे विभक्त करके उन स्थानो का नाम दण्डक रख दिया गया है।

नरक गति का दण्डक एक, तिर्यञ्च गति के नव, मनुष्यगति का एक, और देवगति के तेरह। इस प्रकार सब मिलाकर चौबीस दण्डक होते हैं।

★



१७
बोल सतरहवाँ : लेश्या छह

१	कृष्ण लेश्या	४	तेजो लेश्या
२	नील लेश्या	५	पद्म लेश्या
३	कापोत लेश्या	६	शुक्ल लेश्या

व्याख्या

जीव के शुभाशुभ परिणाम को लेश्या कहते है। अथवा जिस परिणाम से कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध हो, उसे लेश्या कहते हैं। लेश्या के दो भेद हैं -भाव और द्रव्य। भाव लेश्या विचार रूप और द्रव्य लेश्या पुद्गल रूप होती है।

अथवा लेश्या के दो भेद है —धर्म लेश्या और अधर्म लेश्या। पहले की तीन अधर्म लेश्या और अगली तीन धर्म लेश्या। इनको अशुभ लेश्या और शुभ लेश्या भी कहते है।

कृष्ण लेश्या —

अतिरौद्र सदा क्रोधी, मत्सरी धर्म-वर्जित।
निर्दयो वैर-सयुक्त, कृष्ण-लेश्याऽधिको नर॥

कृष्ण लेश्या वाले जीव के विचार अत्यन्त क्रूर होते हैं, वह क्रोधी होता है, वह ईर्ष्यालु होता है, उसका जीवन धर्म-शून्य होता है, वह दया रहित होता है, और उसके मन मे सदा वैर-विरोध की भावना रहती है।

नील लेश्या—

> असलो मन्द-बुद्धिश्च, स्त्री-लुब्ध पर-वञ्चक ।
> कातरश्च सदा मानी, नील-लेश्याऽधिको नर ॥

नील लेश्या वाला जीव आलसी, मन्द बुद्धि वाला, कामुक, मायावी, डरपोक और सदा अभिमानी होता है।

कापोत लेश्या—

> शोकाकुलः सदा रुष्ट, पर निंदात्मशंसक ।
> संग्रामे प्रार्थते मृत्यु ; कापोतलेश्याधिकोनरः ॥

कापोत लेश्या वाला जीव शोक से व्याकुल रहता है, सदा क्रोध मे भरा रहता है। पर-निन्दा और स्व-प्रशसा किया करता है, और सग्राम मे जाकर कायर बन जाता है, मृत्यु चाहता रहता है।

तेजो लेश्या—

> विद्यावान् करुणा-युक्तः, कार्याऽकार्य विचारक ।
> लाभाऽलाभे सदा प्रीत, तेजोलेश्याधिको नर. ॥

तेजोलेश्या वाला जीव विद्या-प्रेमी होता है, करुणाशील होता है, कर्तव्य और अकर्तव्य में विवेक रखता है, और लाभ तथा अलाभ मे सदा प्रसन्न रहता है।

पद्म लेश्या—

> क्षमावान् निरतस्त्यागे, गुरु-देवेषु भक्तिमान् ।
> शुद्ध-चित्त. सदाऽऽनन्दी; पद्म-लेश्याधिको नर. ॥

पद्म लेश्या वाला जीव क्षमाशील और त्याग-निरत होता है, देव और गुरु की भक्ति करता है, उसका चित्त सदा प्रसन्न रहता है, और वह सदा प्रमुदित रहता है।

शुक्ल लेश्या—

राग-द्वेष-विनिर्मुक्तः, शोक-निन्दा-विवर्जितः।
परमात्मभावसम्पन्नः, शुक्ल-लेश्याधिको नरः॥

शुक्ल लेश्या वाला जीव राग और द्वेष से रहित होता है। अथवा मन्द राग और मन्द द्वेष वाला होता है। वह शोक और निन्दा के वेग से भी परे रहता है। और परम शुक्ल लेश्या वाला अन्ततः परमात्म-दशा को प्राप्त कर लेता है। यह आत्मा परम शुद्ध आत्मा होता है।

*

१८
बोल अठारहवाँ : दृष्टि तीन

१ सम्यग्दृष्टि
२ मिथ्यादृष्टि
३ मिश्रदृष्टि

व्याख्या

यहाँ पर दृष्टि का अर्थ है—दर्शन। संसार में जितने भी जीव हैं, उनमें इन तीन दृष्टियों में से एक न एक दृष्टि अवश्य मिलती है। ये दृष्टियाँ समुच्चयरूप से चारों गतियों के जीवों में उपलब्ध होती हैं।

सम्यग् दृष्टि—मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के क्षय से, उपशम से अथवा क्षयोपशम से आत्मा मे जो एक आत्मानुलक्षी शुद्ध परिणाम उत्पन्न होता है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते है।

मिथ्या दृष्टि—मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से जीव में जब अदेव मे देव बुद्धि, अधर्म में धर्म बुद्धि और अगुरु मे गुरुबुद्धि हो जाती है, तब उस दृष्टि को मिथ्या दृष्टि कहते हैं।

मिश्र दृष्टि—मिश्र मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा मे जो सत्यासत्य मिश्रित दोलायमान स्थिति पैदा होती है, उसे मिश्र दृष्टि कहते हैं। इस दृष्टि मे जीव न एकान्त सत्योन्मुख होता है, और न एकान्त असत्योन्मुख। किन्तु सत्य और असत्य से विलक्षण एक भिन्न मिश्रित-सी अवस्था होती है।

*

१६

बोल उन्नीसवाँ : ध्यान चार

१ आर्त ध्यान
२ रौद्र ध्यान
३ धर्म ध्यान
४ शुक्ल ध्यान

व्याख्या

चित्त को एकाग्र करना ध्यान है। अपनी चिन्तन-धारा को अनेक विषयो से समेटकर किसी एक वस्तु या विषय पर एकाग्र कर लेना, स्थिर कर लेना ही ध्यान है।

ध्यान चार प्रकार का है। पहले दो ससार के कारण है। अत वे हेय है, त्याज्य है। अन्त के दो मोक्ष के कारण हैं। अतः वे उपादेय है, ग्रहण करने योग्य है।

ध्यान, ध्याता और ध्येय—इसको त्रिपुटी कहते है। ध्यान करने वाला ध्याता होता है। ध्येय अर्थात् जिसका ध्यान किया जाए, जिसका चिन्तन किया जाए। ध्याता ध्यान के द्वारा ध्येय को प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसको ध्यान की साधना कहते है।

ध्यान के दो भेद है—अशुभ और शुभ। पहले के दो ध्यान अशुभ है, पिछले दो शुभ है।

आर्त ध्यान—मनोज्ञ एव प्रिय वस्तु के वियोग मे और अमनोज्ञ एव अप्रिय वस्तु के सयोग में, चित्त मे जो एक प्रकार की अनवरत एकाग्र चिन्तना होती है, उसको आर्तध्यान कहते है।

रौद्र ध्यान—हिंसा मे, असत्य मे, चोरी में और धन आदि के ममत्वभाव मे, मन को एकाग्र करना, मन को जोडना, रौद्र ध्यान है। इसमे परिणाम अत्यन्त क्रूर होते हैं। इसमे, जीव के रुद्र अर्थात् भयकर एव निर्दय भाव रहते है, अत. इस को रौद्र ध्यान कहते हैं।

धर्म ध्यान—जिसमे श्रुत और चारित्र रूप धर्म का चिन्तन किया जाता है, उसे धर्म ध्यान कहते है। सूत्रार्थ का चिन्तन करना, व्रतों का विचार करना, तथा ससार की असारता का मनन करना—यह धर्म ध्यान है।

शुक्ल ध्यान—जो ध्यान कर्म-मल को तीव्र गति से दूर करता है, वह शुक्ल ध्यान है। अथवा पर अवलम्बन के बिना निर्मल आत्म-स्वरूप का अखण्ड-चिन्तन शुक्ल ध्यान है।



२०

बोल बीसवाँ . षड्द्रव्य के तीस भेद

धर्मास्तिकाय के पाँच भेद

१ द्रव्य से एक
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित, अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी
५ गुण से चलन गुण, जल मे मछली का दृष्टान्त

अधर्मास्तिकाय के पाँच भेद

१ द्रव्य से एक
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श रहित, अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोकव्यापी

५ गुण से स्थिर गुण, श्रान्त पथिक को छाया का दृष्टान्त

आकाशास्ति काय के पांच भेद

१ द्रव्य से एक
२ क्षेत्र से लोकालोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित, अरूपी, अजीव, शाश्वत, सर्व-व्यापी
५ गुण से अवकाश-दान गुण, दूध मे बताशे का दृष्टान्त ।

काल द्रव्य के पाँच भेद

१ द्रव्य से एक
२ क्षेत्र से अढाई द्वीप प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-रहित, अरूपी, शाश्वत, अढाई द्वीप वर्ती
५ गुण से वर्तना गुण, नये को पुराना करे, नये पुराने कपडे का दृष्टान्त



जीवास्तिकाय के पाँच भेद

१ द्रव्य से अनन्त
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गध-रस-स्पर्श-रहित, अरूपी, जीव, शाश्वत, लोकवर्ती
५ गुण से उपयोग गुण, चन्द्र की कला का दृष्टान्त

पुद्‌गलास्तिकाय के पाँच भेद

१ द्रव्य से अनन्त
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गध-रस-स्पर्श-सहित, रूपी, अजीव, शाश्वत, लोकवर्ती
५ गुण से पूरण-गलन गुण, मिलते बिखरते बादल का दृष्टान्त

व्याख्या

प्रस्तुत बोल मे षड् द्रव्य का निरूपण किया गया है। द्रव्य, पदार्थ और वस्तु—ये एकार्थवाची शब्द हैं। जिसमें गुण और पर्याय रहते हैं, उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य का सहभावी धर्म गुण

कहलाता है, और द्रव्य का क्रमभावी धर्म पर्याय कहलाता है। द्रव्य, गुण और पर्याय तीनो परस्पर सम्बद्ध हैं। द्रव्य के विना गुण और पर्याय नही, और गुण एव पर्याय के विना द्रव्य नही। गुण नित्य होता है, और पर्याय क्षणिक।

चेतना-शून्य तत्त्व को अजीव कहते है। अजीव के पांच भेद हैं—धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और काल।

धर्म—गति-शील तत्त्वो की गति मे सहायक जो तत्त्व, वह धर्म है। गति-शक्ति जीव और पुद्गल की अपनी है, परन्तु धर्म उसमे निमित्त कारण, सहकारी कारण वन जाता है। धर्म के विना जीव और पुद्गल स्वभावत· गति-शील होते हुए भी गति नही कर सकते। जैसे मछली मे तैरने की शक्ति होने पर भी वह जल के विना नही तैर सकती।

अधर्म—स्थितिशील तत्त्वो की स्थिति में सहायक जो तत्त्व, वह अधर्म है। जीव और पुद्गल दोनो मे स्थित होने का अपना स्वभाव है, पर उसमे निमित्त अधर्म है। जैसे पथिक के लिए वृक्ष की छाया। ठहरता तो पथिक स्वय ही है, परन्तु छाया उसमें निमित्त कारण, सहकारी कारण वन जाती है। ठीक इसी प्रकार जीव एवं पुद्गल में ठहरने का स्वभाव है, परन्तु अधर्म उसमे निमित्त है। विना इसके कोई भी पदार्थ स्थिर नही हो सकता।

आकाश—जो अवकाश देता है, आश्रय देता है, वह आकाश है। आकाश सवका आधार है, शेप सभी द्रव्य आधेय हैं। व्यवहार दृष्टि से त्रस एव स्थावर जीवों का आधार पृथ्वी, पृथ्वी का आधार जल, जल का आधार वायु और वायु का आधार आकाश है, आकाश का अन्य कोई आधार नही। वह आप ही अपना आधार है।



क्योकि उससे बडा कोई पदार्थ नही। तत्वत आकाश ही पृथ्वी जल, वायु, आदि सभी जीव-अजीव को अपने में अवकाश देता है, आश्रय देता है, जैसे दूध से भरे कटोरे मे बताशा। जिस प्रकार दूध में बताशा समा जाता है, वैसे ही सब पदार्थ आकाश मे समाये हुए है।

आकाश के दो भेद हैं—लोकाकाश और अलोकाकाश। जहाँ तक धर्म और अधर्म आदि हैं, वह लोकाकाश, शेष अलोकाकाश।

काल—काल अर्थात् समय। जो पुरानी वस्तु को नयी और नयी को पुरानी करता है, वह काल है। समय, पल, घडी, दिन और रात-ये सब काल के कार्य हैं। पदार्थों की जो प्रतिक्षण पर्याय बदल रही है, उसका निमित्त अर्थात् सहकारी कारण काल है।

जीव—चेतनामय तत्व जीव है। उपयोग जीव का लक्षण है। यह लक्षण ससारी जीव और मुक्त जीव सभी मे घटित होता है। जीव कभी उपयोग—शून्य नही हो सकता। जीव के मुख्य रूप मे दो भेद हैं—ससारी और मुक्त। समग्र चैतन्य तत्व का इन दो भेदो मे समावेश हो जाता है।

पुदगल—जिसमें पूरण, अर्थात् मिलन और गलन अर्थात् पृथक् भवन का स्वभाव है, वह पुद्गल है। जो मिलता है, बिछुडता है, वह पुद्गल है। जिसमे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श—ये चार गुण हो, वह पुद्गल है। 'पुद्' और 'गल्' इन दो धातुओ के सयोग से पुद्गल शब्द बना है। जिसका अर्थ है सश्लेष और विश्लेष। ईंट, पत्थर, लकडी, मिट्टी आदि—ये सब पुद्गल है।

इन षड् द्रव्यो में एक काल को छोड कर शेष सभी द्रव्य अस्ति-काय-रूप हैं। अस्ति अर्थात् प्रदेश, काय अर्थात् समूह।

ये पाँचो द्रव्य, प्रदेश-समूहात्मक हैं। अतः ये अस्तिकाय कहे जाते है। परन्तु काल के प्रदेश नही होते। अतः काल अस्तिकाय नही है। अस्तिकाय द्रव्य पाँच है—धर्म, अधर्म, आकाश, जीव और पुद्गल।

*

२१
बोल इक्कीसवाँ : राशि दो

१ जीव राशि
२ अजीवराशि

व्याख्या

राशि का अर्थ है—समूह। प्रस्तुत बोल में संसार की समस्त वस्तु—चेतन और अचेतन—दो समूहो मे विभक्त हैं—जीव राशि और अजीव राशि। ससार मे कोई वस्तु ऐसी शेष नही रह जाती, जो इन दो राशि में न आ सके। ससारी से लेकर सिद्ध तक, और सिद्ध से लेकर ससारी जीव तक, समस्त चेतनामय शक्तियों का समावेश हो जाता है—जीव राशि मे। धर्म, अधर्म, आदि समस्त जड तत्त्वों का समावेश हो जाता है—अजीव राशि मे।

जीवराशि—जो चेतना-शक्ति से युक्त हो, वह जीव है। जीवों की राशि को, जीवों के समुदाय को जीव राशि कहते हैं। जीव के दो भेद हैं—बद्ध और मुक्त। जीव राशि मे दोनो प्रकार के जीवो का समावेश हो जाता है।

•

अजीवराशि—चेतना रहित जितने भी तत्त्व हैं, उनके समुदाय को अजीव राशि कहते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल—ये सब अजीव राशि में आ जाते हैं।



२२

बोल बाईसवाँ : श्रावक के बारह व्रत

पाँच अणुव्रत—

१ अहिंसा अणुव्रत
२ सत्य अणुव्रत
३ अस्तेय अणुव्रत
४ ब्रह्मचर्य अणुव्रत
५ अपरिग्रह अणुव्रत

तीनगुण व्रत—

१ दिशा परिमाण व्रत
२ भोगोपभोग परिमाण व्रत
३ अनर्थदण्ड विरमण व्रत

चारशिक्षा व्रत—

१ सामायिक व्रत
२ देशावकाशिक व्रत

३ पौषध व्रत
४ अतिथि-संविभाग व्रत

व्याख्या

शास्त्र में सीमितरूप में पाले जाने वाले अहिंसा आदि धर्म को 'श्रावक धर्म' कहा है। गृहस्थ धर्म का अर्थात् गृहस्थोचित सम्यक् आचार का पालन करने वाला पुरुष 'श्रावक' और स्त्री 'श्राविका' कहलाती है।

श्रावक शब्द श्रवण अर्थ वाले 'श्रु' धातु पर से बना है। जो श्रवण करें, अर्थात् जो आत्म-कल्याण के प्रशस्त मार्ग को सुने, वे श्रावक और श्राविका कहे जाते हैं। इनको उपासक और उपासिका भी शास्त्र मे कहा गया है।

पाँच अणुव्रत—

हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य और परिग्रह—ये प्रसिद्ध पाप है। साधक का कर्तव्य है कि वह इन पाँच पापों से बचकर चले। परन्तु गृहस्थ साधक इन पांच पापों का सर्वथा परित्याग नहीं कर सकता है।

वह स्थूल हिंसा का त्याग कर सकता है, सूक्ष्म हिंसा का नहीं। पांच स्थावर जीवों की हिंसा का त्याग वह नहीं कर सकता। त्रस जीवों में भी वह निरपराध जीव की हिंसा का त्याग कर सकता है, सापराध की हिंसा का नहीं। अतः उसका अहिंसा व्रत, साधु के महाव्रत की अपेक्षा अणुव्रत अर्थात् छोटा व्रत कहाता है।



इसी प्रकार वह श्रावक स्थूल असत्य को, स्थूल स्तेय को, स्थूल अब्रह्म को और स्थूल परिग्रह को छोड सकता है, सूक्ष्म का त्याग नही कर सकता। क्योकि वैसा करने पर उसका गृहस्थ जीवन चल सकना कठिन है। चतुर्थ व्रत के रूप में यदि वह पुरुष है, तो स्व-दार-सन्तोष-व्रत और यदि वह नारी है, तो स्व-पति-सन्तोष-व्रत ग्रहण करता है। पञ्चम व्रत के रूप मे वह अपने परिग्रह का परिमाण निर्धारित करता है।

तीन गुणव्रत—गुण-व्रत का अर्थ है—अहिंसा आदि पाँच मूल व्रतो को पुष्ट करने वाले, और उनमें अभिवृद्धि करने वाले नियम।

चार दिशा, चार विदिशा और ऊर्ध्वदिशा तथा अधोदिशा—इन दश दिशाओ का परिमाण निर्धारित करना, ताकि सीमा से बाहर, मर्यादा से बाहर गमन और आगमन न हो। यह दिशा परिमाण गुण व्रत है, इस में क्षेत्र की मर्यादा की जाती है।

उपभोग अर्थात् एक बार भोग के काम मे आने वाली खाने-पीने आदि की वस्तु और परिभोग अर्थात् बार-बार भोग के काम मे आने वाली पहनने-ओढने आदि की वस्तु—इनकी मर्यादा करना। जैसे आनन्द श्रावक ने छब्बीस बोल की मर्यादा की थी। यह उपभोग परिभोग परिमाण गुण व्रत है।

श्रावक प्रयोजन के लिए तो हिंसा आदि करता है, परन्तु विना प्रयोजन के हिंसा आदि का उसको परित्याग होता है। अत. अनर्थदण्ड का, अर्थात् विना प्रयोजन के हिसा आदि का त्याग, अनर्थदण्ड-विरमण गुणव्रत है।

चार शिक्षा व्रत—

शिक्षा का अर्थ है, साधु-जीवन का अभ्यास। धीरे-धीरे

साधु-जीवन योग्य साधना की ओर अग्रसर होना, इस शिक्षा व्रत का मुख्य उद्देश्य है।

नित्य प्रति उभय काल मे सामायिक करना, सामायिक शिक्षा व्रत है। दिशाव्रत मे जो क्षेत्र-मर्यादा की थी, उसको और अधिक सीमित करना, देशावकाशिक शिक्षा व्रत है। पर्व दिवसो मे पौषध व्रत एव दयाव्रत करना पौषध शिक्षा व्रत है। और द्वार पर आए साधु, श्रावक, सम्यग्दृष्टि आदि अतिथि को सम्मान पूर्वक यथाशक्ति दान देना, अतिथि सविभाग शिक्षा व्रत है। ये चार शिक्षा व्रत हैं। इस प्रकार श्रावक के बारह व्रत है।

★

२३

बोल तेईसवाँ : साधु के पाँच महाव्रत

१ अहिसा महाव्रत
२ सत्य महाव्रत
३ अस्तेय महाव्रत
४ ब्रह्मचर्य महाव्रत
५ अपरिग्रह महाव्रत

व्याख्या

साधु को शास्त्र मे 'श्रमण' कहा गया है। अत. साधु-धर्म को 'श्रमण-धर्म' कहना उचित ही है। श्रावक धर्म से आगे की कोटि श्रमण-धर्म की है। साधु होने के लिए केवल बाह्य वेष बदल

लेना ही पर्याप्त नही है, बल्कि उसके लिए जीवन को ही बदलना पडता है। बाने के साथ बान भी बदलनी पडती है, तभी सच्ची साधुता प्राप्त होती है।

ससार में पाँच महापाप हैं—हिंसा, असत्य, स्तेय (चोरी), अब्रह्मचर्य और परिग्रह (आसक्ति)।

साधु इन पाचो महापापो का त्याग तीन करण और तीन योग से करता है। करण का अर्थ है—कृत, कारित और अनुमत। अर्थात् करना, कराना और अनुमोदन करना। योग का अर्थ है—मन, वचन और काय।

साधु इन पाँचो महापापो को न स्वयं करता है, न दूसरो से करवाता है, और न करने वालो का अनुमोदन करता है—मन से, वचन से और काय से। अत साधु के इन व्रतो को शास्त्र मे महाव्रत कहा गया है।

महाव्रत का अर्थ है—बडी प्रतिज्ञा, महान प्रतिज्ञा, पूर्ण प्रतिज्ञा। उसमें किसी भी प्रकार की स्थूल एव सूक्ष्म की छूट नही होती।

साधु पूर्ण अहिंसा, पूर्ण सत्य, पूर्ण अस्तेय, पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्ण अपरिग्रह का परिपालन करता है। अत उसकी प्रतिज्ञा को महाव्रत कहना उचित ही है।

★

२४

बोल चौबीसवाँ : भंग ४६

अंक ११ भंग नव—एक करण, एक योग से कथन—

१ करूँ नही मन से
२ करूँ नही वचन से
३ करूँ नहीं काय से
४ कराऊँ नही मन से
५ कराऊँ नही वचन से
६ कराऊँ नही काय से
७ अनुमोदूँ नही मन से
८ अनुमोदूँ नही वचन से
९ अनुमोदूँ नही काय से

अंक १२ भंग नव—एक करण, दो योग से कथन—

१ करूँ नही मन से, वचन से
२ करूँ नही मन से, काय से
३ करूँ नही वचन से, काय से
४ कराऊँ नही मन से, वचन से
५ कराऊँ नही मन से, काय से



६ कराऊँ नही वचन से, काय से
७ अनुमोदूँ नही मन से, वचन से
८ अनुमोदूँ नही मन से, काय से
९ अनुमोदूँ नही वचन से, काय से

अक १३ भग तीन—एक करण, तीन योग से कथन—

१ करूँ नही मन से, वचन से, काय से
२ कराऊँ नही मन से, वचन से, काय से
३ अनुमोदूँ नही मन से, वचन से काय से

अक २१ भग नव—दो करण, एक योग से कथन—

१ करूँ नही, कराऊँ नही, मन से
२ करूँ नही, कराऊँ नही, वचन से
३ करूँ नही, कराऊँ नही, काय से
४ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से
५ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से
६ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, काय से
७ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से
८ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से
९ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, काय से

अक २२ भग नव—दो करण, दो योग से कथन—

१ करू नही कराऊँ नही मन से वचन से
२ करूँ नही कराऊँ नही मन से काय से
३ करू नही कराऊँ नही वचन से काय से
४ करू नही अनुमोदूँ नहीं मन से वचन से
५ करूँ नही अनुमोदूँ नही मन से काय से
६ करूँ नही अनुमोदूँ नही वचन से काय से
७ कराऊँ नही अनुमोदूँ नही मन से वचन से
८ कराऊँ नही अनुमोदूँ नही मन से काय से
९ कराऊँ नही अनुमोदूँ नही वचन से काय से

अक २३ भग तीन—दो करण, तीन योग से कथन—

१ करूँ नही कराऊँ नही मन से वचन से काय से
२ करूँ नहीं अनुमोदूँ नही मन से वचन से कायसे
३ कराऊँ नही अनुमोदूँ नही मन से वचनसे कायसे

अक २१ भग तीन—तीन करण, एक योग से कथन—

१ करूँ नही कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से
२ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से
३ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, काय से

अक ३२ भग तोन—तीन करण, दो योग से कथन—

१ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मनसे, वचनसे
२ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मनसे, कायसे
३ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नहीं, वचनसे कायसे

अक ३३—भग एक-तीन करण, तीन योग से कथन—

करूं नही, कराऊ नही, अनुमोदूँ नहीं,
मन से, वचन से, काय से ।

सेरो-यन्त्र

अक	११	१२	१३	२१	२२	२३	३१	३२	३३
भग	९	९	३	९	९	३	३	३	१
करण	१	१	१	२	२	२	३	३	३
योग	१	२	३	१	२	३	१	२	३
सर्व भंग	९	१८	२१	३०	३९	४२	४५	४८	४९

८१ सेरी मे से रुकने वाली सेरी क्रमश

९ १८ २७ १८ ३६ ५४ २७ ५४ ८१

व्याख्या

शास्त्र मे दो प्रकार की परिज्ञा अर्थात् बुद्धि कही गई है—ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञा। ज्ञपरिज्ञा से पदार्थों का स्वरूप जाना जाता है, कि कौन पदार्थ कैसा है ? हेय है या उपादेय ? और प्रत्याख्यान परिज्ञा से हेय वस्तु का त्याग और उस की पद्धति का विचार है। प्रस्तुत बोल मे प्रत्याख्यान-परिज्ञा का स्वरूप बताया है, कि हेय वस्तु का त्याग कैसे करना चाहिए ?

पाप का परित्याग जीवन की साधारण घटना नही है, कि किसी हेय वस्तु को छोड़ दिया और बस त्याग हो गया। इस प्रकार के त्याग तो मिथ्यादृष्टि जीव भी करते रहते है। किन्तु वह त्याग प्रत्याख्यान कोटि मे नही आता। प्रत्याख्यान कोटि के लिए आवश्यक है, कि कृत, कारित और अनुमत तथैव मन, वचन और काय के स्वरूप का तथा इनके पारस्परिक सम्बन्धो का गम्भीरता से विचार किया जाए। यही विचार प्रस्तुत बोल में किया गया है।

भग का अर्थ है, विकल्प, प्रकार, एव विभाग रूप रचना-विशेष। इस अर्थ के अनुसार प्रत्याख्यान के ४६ भग है। अन्तिम ३३ के अंक का भंग पूर्ण है, क्योकि वह नवकोटि प्रत्याख्यान है। उसमें किसी भी प्रकार के अप्रत्याख्यान के अश की छूट नही है। शेष भग अपूर्ण है, अर्थात् उनमें किसी न किसी रूप से अप्रत्याख्यानाश की छूट रह जाती है।

★

२५

बोल पच्चीसवाँ : चारित्र पाँच

१ सामायिक चारित्र
२ छेदोपस्थापन चारित्र
३ परिहार विशुद्धि चारित्र
४ सूक्ष्म-सम्पराय चारित्र
५ यथाख्यात चारित्र

व्याख्या

आत्मा को निज स्वरूप मे स्थित रखने का प्रयत्न चारित्र है। चारित्र, विरति, संयम, और सवर ये सब एकार्थक शब्द है। चारित्र का अर्थ है—अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति। तत्वत आस्रव के निरोध को चारित्र कहा जाता है।

शास्त्रीय भाषा में चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय से, उपशम से और क्षयोपशम से होने वाले विरति परिणाम को चारित्र कहते हैं। अथवा आत्मा का सावद्य योग से निवृत्त होकर निरवद्य योग मे प्रवृत्त होना भी चारित्र कहा जाता है। चारित्र के सामायिक आदि पाँच भेद हैं।

सामायिक चारित्र—सामायिक अर्थात् सम-भाव। सम भाव की साधना को सामायिक चारित्र कहते हैं। अथवा सावद्य

प्रवृत्ति का परित्याग और निरवद्य प्रवृत्ति का आसेवन सामायिक चरित्र है।

छेदोपस्थापन चारित्र—जिस चारित्र मे पूर्व गृहीत चारित्र-पर्याय का छेद एव महाव्रतो मे उपस्थापन अर्थात् आरोपण होता है, उसे छेदोपस्थापन चारित्र कहते हैं। यह चारित्र पूर्व चारित्र को छेदन करके आता है, अतः इसे छेदोपस्थापन कहते हैं।

उक्त चारित्र के दो भेद हैं—निरतिचार और सातिचार। मध्य के २२ तीर्थङ्करों मे से जब २३ वे तीर्थङ्कर के मुनि या आर्याएँ, २४ वें तीर्थङ्कर के शासन में सम्मिलित होते हैं, तब सामायिक चारित्र का छेदन कर महाव्रतारोपण रूप छेदोपस्थापन चारित्र ग्रहण करते हैं, यह निरतिचार अर्थात् दोष-रहित स्थिति मे छेदोपस्थापन चारित्र का ग्रहण है। इसी प्रकार प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के शासन मे सर्वप्रथम सामायिक चारित्र ग्रहण किया जाता है, अनन्तर अमुक काल के वाद, जो बडी दीक्षा के रूप में महाव्रतारोपण किया जाता है, यह भी निरतिचार छेदोप स्थापन चारित्र है। और जब किसी दोष-विशेष के कारण पूर्व-दीक्षा पर्याय का छेदन कर प्रायश्चित्त रूप मे आत्मशुद्धि के लिए पुन. महाव्रतारोपण की क्रिया की जाती है, वह सातिचार छेदोपस्थापन चारित्र है।



परिहार विशुद्धि चारित्र—जिस चारित्र मे परिहार नामक विशेष तप किया जाता है, उसे परिहार विशुद्धि चारित्र कहते है। परिहार तप से आत्मा की विशेष शुद्धि होती है। परिहार अर्थात् सघ से पृथक् होकर विशिष्ट तपस्या से आत्मा की शुद्धि करना, परिहार विशुद्धि है।

परिहार नामक तप की विधि सक्षेप मे इस प्रकार है—

"नव साधुओ का गण परिहार तप प्रारम्भ करता है। इनमे से चार तप करते हैं, और चार उनकी वैयावृत्य (सेवा) करते हैं, तथा एक उनके गुरु (निर्देशक) रूप मे रहता है।

पहले चार साधु छह मास तक उपवास, बेला, तेला, चौला, पचौला, तथा आयविल आदि तप करते हैं। फिर सेवा करने वाले छह मास तक तप करते हैं, और तप करने वाले सेवा करते हैं। फिर गुरु पद पर रहा हुआ साधु भी छह मास तक तप करता है। इस प्रकार अठारह मास में इस परिहार तप का कल्प पूर्ण होता है।

सूक्ष्म सम्पराय चारित्र—सम्पराय का अर्थ कषाय होता है। कषाय चार हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। परन्तु इस चारित्र मे केवल सूक्ष्म सज्वलन रूप लोभ कषाय ही शेष रह जाता है। अत इसको सूक्ष्म सम्पराय चारित्र कहते हैं। यह चारित्र दशवें गुणस्थान का है।

यथाख्यात चारित्र—सर्वथा विशुद्ध चारित्र को अर्थात् अनिचार रहित चारित्र को यथाख्यात चारित्र कहते हैं। इसमें कषाय का उदय नही रहता। अत यह विशुद्ध चारित्र है। अथवा कषाय-मुक्त साधु का चारित्र यथाख्यात चारित्र है। इसको वीतराग चारित्र भी कहते हैं। ग्यारहवे गुणस्थान से लेकर चौदहवे गुणस्थान तक का चारित्र यथाख्यात चारित्र है। यद्यपि ग्यारहवें गुणस्थान मे कषाय की (सूक्ष्म लोभ कषाय की) सत्ता रहती है, तथापि वहाँ उसका उदय नही है। अत यह भी यथाख्यात चारित्र (विशुद्धतम चारित्र) कहा जाता है।

★